THE
VIDYABHAWAN SANSKRIT GRANTHAMALA
143

SAMAYAMĀTṚKĀ

OF

MAHĀKAVI KṢEMENDRA

Edited with

The 'Prakāśa' Hindi Commentary and Notes

By

Dr. RAMĀŚAṄKAR TRIPĀṬHĪ M. A., Ph. D.
(Professor, Institute of Oriental Philosophy, Vrindavan)

THE
CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
VARANASI-1
1967

First Edition
1967
Price Rs. 4-00

Also can be had of
THE CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE
Publishers & Antiquarian Book-Sellers
P. O. Chowkhamba, Post Box 8, Varanasi-1 (India)
Phone : 3145

परमश्रद्धेय विद्वद्वरेण्य

डॉ० सिद्धेश्वर भट्टाचार्य

के

करकमलों में सादर

समर्पित

भूमिका

संस्कृत का सम्पूर्ण काव्य साहित्य विषय और रचना-शैली के विकास की दृष्टि से तीन श्रेणियों अथवा युगों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम श्रेणी के काव्यों में 'रामायण' और महाभारत आते हैं। ये दोनों वैदिक और लौकिक सन्धिकाल के काव्य हैं। दूसरे युग का प्रतिनिधित्व अकेले कविकुलार्णव के कौस्तुभमणि महाकवि कालिदास की अमर रचनायें करती हैं। तीसरी श्रेणी में कालिदासोत्तर कवियों की रचनाओं को रखा जा सकता है। निश्चय ही वाल्मीकि और कालिदास के बीच में भी अनेक काव्यकारों ने संस्कृत-काव्योद्यान में अपनी रचना-लताओं का आरोपण किया होगा, किन्तु आज वे अज्ञातप्राय हैं।

रामायण आदर्श श्रेणी का एक पवित्र ग्रन्थ है। उसमें समाज की नानाविध परिस्थितियों का एकसाथ समावेश है। महाभारत तो भारतीय ज्ञानरत्नों का क्षीरसागर ही ठहरा।

महाकवि कालिदास की अमर कृतियाँ अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखती हैं। संस्कृत काव्यार्णव में उनकी अमृत-कृतियों की उठती हुई तरङ्गों के आकर्षण को देखकर यद्यपि बहुत से परवर्ती कवियों ने उनकी पद्धति का अनुकरण करने का पूर्ण प्रयत्न किया, किन्तु वे उसकी छाया को भी उस निपुणता से स्पृष्ट न कर सके। कालिदास की साहित्यिक श्रेष्ठता एवं योग्यता भावों को अभिव्यक्त करने में है। उन महाकवि का भाव-विधान बहुत ही सुसंगठित, सघन, मौलिक, समाकर्षक एवं स्थानोचित है। उन्होंने कलापक्ष पर—रचना-विधान पर—उतना बल नहीं दिया है। भाव के सरस-सागर में पाठक-कमलों को विकसित करने वाले कवि-दिनमणि के पास भला दार्शनिक आकर्षक रचनाविधान के लिये समय ही कहाँ से था ? अथवा शरीर के बाह्यपक्ष का उनके यहाँ कोई मूल्य न था, उस पर उनकी कोई आस्था न थी—

में लिखी थी। गुरु एवं शिष्य के बीच काल का अन्तर प्रायः २५ वर्ष होना चाहिये। इस प्रकार यह निश्चित होता है कि 'क्षेमेन्द्र' उनके समय से प्रायः २५ वर्ष बाद—९९० ई० के सन्निहित काल में हुए होंगे। उनकी मृत्यु सम्भवत १०६५ ई० के अनन्तर हुई थी। अपने जीवन के उत्तरकालान्त में वे सन्यासी होकर 'त्रिपुरेश' पर्वत पर मृत्युपर्यन्त रहे और वहीं उन्होंने १०६५ ई० में 'दशावतारचरित' लिखा था। यह 'कलश' का शासनकाल था। 'कविकण्ठाभरण', 'औचित्यविचारचर्चा', 'सुवृत्ततिलक' और 'समयमातृका' की परिसमाप्ति पर उन्होंने 'अनन्त' की प्रशस्ति की है और अपने प्रबन्ध की पूर्णता उनके राज्योदय काल में बतलायी है। इन्हीं पिता पुत्र 'अनन्त' (१०२८-१०६३ ई०) तथा 'कलश' (१०६३-१०८९ ई०) के राज्यकाल में 'क्षेमेन्द्र' की जीवनलीला व्यतीत हुई। अतः उनका काल एकादश शताब्दी का पूर्वार्द्ध और कुछ उत्तरार्द्ध मानना न्यायसंगत होगा।

२ : 'क्षेमेन्द्र' की वंश परम्परा :—

'क्षेमेन्द्र' 'सिन्धु' के पौत्र तथा 'प्रकाशेन्द्र' के पुत्र थे। ये लोग तत्कालीन राजा के अमात्य पद पर प्रतिष्ठित थे। 'भारतमञ्जरी' में 'क्षेमेन्द्र' ने अपने पिता की लम्बी प्रशस्ति लिखी है, जिससे उनकी विशाल सम्पत्ति तथा उदाराशयता से मण्डित दानशीलता का परिचय प्राप्त होता है। 'क्षेमेन्द्र' सम्पन्न परिवार के सुखी कवि थे। इनका पुत्र 'सोमेन्द्र' योग्य पिता का योग्य पुत्र था।

३ : क्षेमेन्द्र का प्रारम्भिक जीवन :—

'क्षेमेन्द्र' ने अपने प्रारम्भिक जीवन को सार्थकरूप से व्यतीत करते हुए भावी कवि-जीवन को सुदृढ़ आधार-शिला के रूप में उसे निर्मित किया। 'कविकण्ठाभरण' में उनके द्वारा कवित्वशक्ति आदिकल्प से स्वाभाविक बतलायी गयी है और आभिकल्प से अर्जित। अर्जित कवित्वशक्ति सरस्वती की उपासना—मन्त्र-अभ्यास के साथ ही मानव के प्रज्ञ-प्रज्ञ अभ्यास से अर्जित की जाती है। *'क्षेमेन्द्र' की कवित्वशक्ति स्वाभाविक की अपेक्षा अर्जित अधिक है। इसका निर्देश स्वयं उन्होंने भी किया है :—*

कृत्वा निश्चलदैवपौरुषमयोपायं प्रसूत्यै गिराम् ।
क्षेमेन्द्रेण यदर्जितं शुभफलं ते नास्तु काव्यार्थिनाम् ॥

—कवि० ४।२

उनके जीवन का अधिकांश सभ्य व्यक्तियो के ही मध्य बीता था। उन्होंने नीरस तार्किक और वैयाकरण का अधिक सहवास नहीं किया था। इन लोगों को उन्होने कविता के विकास का विघ्न कहा है।[1] 'कालिदास के साहित्यामृत का उन्होंने भूरि-भूरि पान किया था।[2] कोष, गीत, गाथा तथा देशी भाषाओ के काव्यो का उन्होने भली-भाति अध्ययन किया था।[3] उनकी मित्रमण्डली उज्ज्वल चरित्र की थी और स्वय वे भी बोलने तथा परिधान मे भव्य थे। उनका अवशिष्ट समय सामयिक नाटक, अभिनय देखने एव संगीत-श्रवण मे व्यतीत होता था। अच्छे कवियों और लेखकों के अपने यहाँ आ जाने पर अथवा वहीं भी मिल जाने पर वे उनका आदर-सम्मान तथा आर्थिक सहायता करते थे।[4] लोकाचार का उन्हें अच्छा ज्ञान था। एकान्त मे कथाओ और कहानियो को सुनने के ये अभ्यासी थे। चित्रकला की आलोचना के लिये भी उनके पास सूक्ष्म-दृष्टि थी। देश-देशान्तर में भ्रमण कर वहाँ की प्रथाओ, विशिष्टताओ एव मानव-भावनाओं का अध्ययन उनकी अपनी विशिष्टता थी। भारत का विशाल मानचित्र उनकी दृष्टि मे रहता था। 'समयमातृका' मे वेश्या 'कङ्काली' के जीवन-वर्णन के समय अपने इस वैशिष्ट्य का पर्याप्त प्रमाण उन्होंने प्रदर्शित किया है।

---

१. न तार्किकं केवलशाब्दिकं वा कुर्याद् गुरुं सूक्तिविकासविघ्नम् ॥

—कवि० १।१५

यस्तु प्रकृत्यश्मसमान एव कष्टेन वा व्याकरणेन नष्टः ।
तर्केण दग्धोऽनलधूमिना वाऽप्यविद्धकर्णः सुकविप्रबन्धैः ॥ —वही १।२२
रसेन् पुनस्नार्विकगन्धमुग्धम् ॥ —वही १।१९

२. पठेत् समस्तान् किल कालिदासकृतप्रबन्धानितिहासदर्शी । —वही १।१९

३. गीतेषु गाथास्वथ देशभाषाकाव्येषु दद्यात् सरसेषु कर्णम् । —वही १।१७

४. नाटकाभिनयप्रेक्षा शृंगारालिङ्गिता मतिः ।
कवीनां सम्भवे दानं गीतेनात्माधिवासनम् । —वही २।५

४ : क्षेमेन्द्र का धर्म :—

शैवदर्शन एवं धर्म की केन्द्रस्थली काश्मीर की पावन भूमि में रहने के कारण क्षेमेन्द्र के पिता शैव धर्म के कट्टर अनुयायी थे। भगवान् शङ्कर की पूजा में वे केवलानन्द की अनुभूति करते थे। हाथों से भगवान् शङ्कर के लिङ्ग अथवा प्रतिमा का गाढालिङ्गन करते हुए उन्होंने अपने प्राणों का परित्याग किया था—

पूजयित्वा स्वयं शर्वं प्रसरद्बाष्पनिर्झरः।
गाढं दोर्भ्यां समालिङ्ग्य यस्तत्रैव व्यपद्यत ॥ —भारतमञ्जरी

शैव पिता के संरक्षण में रहने के कारण 'क्षेमेन्द्र' अपने जन्म से शैव थे। पिता के संरक्षण से क्षेमेन्द्र में शैवमत का जो बीज अंकुरित हुआ था, निश्चय ही वह शैव आचार्य 'अभिनव' गुप्त की शिक्षा एवं सहवसति से द्विपत्रित एवं पल्लवित हुआ होगा। किन्तु कालान्तर में वे परम भागवत आचार्य "सोमपाद" के प्रभाव में आकर वैष्णव धर्म की ओर आकृष्ट हुए और सम्भवतः वैष्णव धर्म को ही अङ्गीकार कर लिये—

श्रीमद्भागवताचार्यसोमपादाब्जरेणुभिः।
धन्यतां यः परां प्राप्तो नारायणपरायणः ॥ —भारतमञ्जरी

"बृहत्कथामञ्जरी" में भी उन्होंने ऐसा ही भाव व्यक्त किया है (बृहत्कथामञ्जरी १९।३७)।

क्षेमेन्द्र परम भागवत आचार्य "सोमपाद" को आचार्य "अभिनवगुप्त" की अपेक्षा अधिक आदर सम्मान प्रदान करते थे। भागवत धर्म को स्वीकार करने के अनन्तर वे आजीवन इसी के अनुयायी बने रहे। परिणामस्वरूप उन्होंने अपने उत्तरस्त जीवनकाल में "दशावतारचरित" की रचना की।

भागवत धर्म की स्वीकृति करने पर भी क्षेमेन्द्र उसके कट्टर अथवा अन्ध अनुयायी न थे। वे अन्य मतों का भी अध्ययन तथा समादर करते थे। उनकी दृष्टि में सभी देवों को समान स्थान प्राप्त था—"साम्य सर्वसुरस्तुतौ"। (कवि०

२।१९)। समन्वय की उनकी प्रवृत्ति विलक्षण थी। वे उदार आशय के एक सहृदय कवि थे। अपने इन्हीं सद्गुणों के कारण प्रौढ़ावस्था में बौद्ध-मत का भी उन्होंने अनुशीलन किया था। इन सबका उनकी लेखनी पर भी व्यापक प्रभाव पड़ा। उनकी "बोधिसत्वावदानकल्पलता" में भगवान् बुद्ध के प्राचीन जन्मों से सम्बद्ध पारमितासूचक आख्यानों का पद्यबद्ध वर्णन है। 'हीनयान' में जो स्थान जातकों का है, वही 'महायान' में अवदानों का है। अवदान के माने है—शुभ्रचरित।

अपनी रचना के डेढ़ सौ वर्षों के भीतर ही इसका तिब्बती भाषा में गौरवपूर्ण अनुवाद हुआ। एक वैष्णव कवि की कृति होने पर भी बौद्ध समाज में इतना आदर पाना 'क्षेमेन्द्र' की प्रौढ़काव्यशैली एवं उक्त गुणों का पर्याप्त द्योतक है।

५ : क्षेमेन्द्र की शिक्षा :—

जैसा ऊपर निर्देश किया गया है, "अभिनवगुप्त" इनके साहित्यिक गुरु थे। "अभिनवगुप्त" एवं 'सोमपाद' से इन्होंने आध्यात्मिक विद्या का परिशीलन किया था। यद्यपि 'क्षेमेन्द्र' अपने गुरु के रूप में इन्हीं दो आचार्यों का निर्देश करते हैं, तथापि इनके अतिरिक्त और भी उनके गुरु रहे होंगे, जिनसे उन्होंने अन्य मतों एवं दर्शनों का अध्ययन किया होगा। वे प्रत्येक व्यक्ति को सर्वविध विद्वता प्राप्ति के लिये सब के शिष्यत्व-स्वीकृति की सम्मति देते हैं :—

"इयुः सर्वशिष्यता ॥" (कवि० २।१४)। कवि "गङ्गक" को उन्होंने अपने उपाध्याय के रूप में स्मरण किया है।

६ : क्षेमेन्द्र का साहित्यिक जीवन :—

अपने साहित्यिक जीवन के प्रभात में क्षेमेन्द्र एक अनुवादक मात्र प्रतीत होते हैं। कवित्वशक्ति तो उन्हें शत-शत अभ्यास के अनन्तर ही प्राप्त हुई थी। अधिक यथार्थ और निर्विवाद बात तो यह है कि क्षेमेन्द्र कवि बने थे। उनमें नैसर्गिक भावोत्पन्न कवित्व शक्ति एवं नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा का पहले पहल अभाव था। किन्तु 'क्षेमेन्द्र' की बलवती इच्छा थी एक सार्वभौम

कवि बनने की। परिणामस्वरूप उन्होंने पैशाची भाषा में लिखित "गुणाढ्य" की "बृहत्कथा" का "बृहत्कथामञ्जरी" के नाम से संस्कृत में पद्यानुवाद किया। जैसा वे कहते हैं—इस ग्रन्थ के वे प्रथम अनुवादकर्ता थे। इस अनुवाद के अनन्तर अवश्य ही उनकी लेखनी को कविता-क्षेत्र में विचरण करने के लिये शक्ति प्राप्त हुई होगी।

बाद में उन्होंने "रामायणमञ्जरी" "भारतमञ्जरी" एवं "वात्स्यायनसूत्र" लिखा। उनके इन ग्रन्थों में वाल्मीकीय रामायण, महाभारत तथा कामसूत्र का सक्षेप प्रस्तुत किया गया है। इसके साथ ही वे अन्य विषयों का भी ज्ञानार्जन करते रहे। उनके ग्रन्थों से प्रकट है कि गणित, ज्योतिष, औषधिशास्त्र, शल्य-चिकित्सा, राजनीति, कामशास्त्र, शैव, वैष्णव तथा बौद्धदर्शन एवं धर्म तथा मन्त्रशास्त्र भी उन्हें भली भांति परिज्ञात थे। "भारतमञ्जरी" के लिखने के अनन्तर ही संभवतः वे 'व्यासदास' के विरुद से विभूषित हुए होंगे।

७ : क्षेमेन्द्र का शब्दभण्डार :—

क्षेमेन्द्र का शब्द-भण्डार विशाल है। उनकी शब्दसङ्कलनशक्ति को देखने से परिज्ञात होता है कि अपने समय तक के उपलब्ध समस्त कोश ग्रन्थों का उन्होंने सम्यक् गाढानुशीलन किया था। अप्रसिद्ध से भी अप्रसिद्ध शब्द उनकी दृष्टि में भ्रमण करते रहते थे और अवसर मिलते ही यथास्थान निविष्ट कर दिये जाते थे। किसी भी दृश्य अथवा भाव को अपने शब्दभण्डार की सहायता से वे बड़ी ही सुगमता से चित्रित कर सकते थे। वस्तुतः वे शब्दकवि थे। उनकी रचनाओं के अधिकांश शब्द दुर्बोध्य हैं और *संस्कृतवाङ्मय में उनका क्वचित्क प्रयोग ही उपलब्ध होता है।* शब्दकाठिन्य के दुरधिगम्य विन्ध्यारण्य में बहुशः उपलब्ध, मनोहारिणी उपमा-प्रपञ्चनी क्षेमेन्द्र के साहित्य को अनुपम ढंग से सुरक्षित कर वास्तविकता का आकर्षक आवरण प्रदान करती है। तत्कालीन समाज में प्रचलित विभिन्न क्रिया-कलापों तथा च दैनन्दिन जीवन के दृश्यों से ये उपमाएं संगृहीत की गई हैं। उपमा के राज्य में 'क्षेमेन्द्र' को उच्चतर आसन दिया जा सकता है।

८ : क्षेमेन्द्र के समय का वातावरण :—

क्षेमेन्द्र के समय काश्मीर का वातावरण कविता जैसी कोमल कला के अनुशीलन के सर्वथा अनुपयुक्त था। काश्मीर के इतिहास में वह युग असन्तोष, षड्यन्त्र, नैराश्य तथा रक्तपात का काल था। तत्कालीन राजा 'अनन्त' जिसका निर्देश 'समयमातृका' की परिसमाप्ति पर भी किया गया है, स्वयं मानसिक दुर्बलता तथा बौद्धिक शिथिलता का पात्र था। तभी तो उसने १०६३ ई० में अपने ज्येष्ठ पुत्र 'कलश' को राज्य देकर भी थोड़े ही वर्षों के अनन्तर पुनः उसे ग्रहण कर लिया। इसके बाद वह १०७७ ई० में राज्यकार्य से अवश्य ही विरत हुआ और कुछ ही वर्षों के अनन्तर १०८१ ई० में आत्महत्या कर ली। उसकी विदुषी महारानी सूर्यवती'' भी अपने पति की चिता पर सती हो गयी।

कवि क्षेमेन्द्र अपने युग के अशान्त वातावरण से इतने असन्तुष्ट तथा मर्माहत थे कि उसे सुधारने में तथा पवित्र और विशुद्ध बनाने के लिये एवं दुष्टता के स्थान पर शिष्टता की भावना को दृढ़ करने के निमित्त अपनी द्रुतगामिनी लेखनी को काव्य के नाना अङ्गों की रचना में लगाया। उन्होंने सुख-दुःख का विवेचन कर जीवन के साथ उनके सम्बन्धों को बड़ी ही समुचित रीति से घटित किया। जीवन की अभ्युन्नति को दृष्टि में रख कर सुमार्ग एवं कुमार्ग की बुराई-भलाई का परीक्षण किया। सीधी चोट करने वाली व्यङ्ग्यात्मक शैली में दैन्य, कार्पण्य, शोषण, असमानता आदि सामाजिक प्रवृत्तियों पर समय प्रहार किया। उनके नीति विषयक उपदेशात्मक अथवा व्यङ्ग्यात्मक काव्यों का एकमात्र उद्देश्य था लोगों को कुमार्ग से हटाकर सुमार्ग पर लाना। बस समाज के इसी उपकार के लिये उनकी जीवनी सर्वदा संघर्षरत रही—

> हासेन लज्जितोऽत्यन्तं न दोषेषु प्रवर्तते।
> जनस्तदुपकाराय ममायं स्वयमुद्यमः॥ —देशोपदेश, १।४

उनकी कृतियों में भाग्य की अवश्यम्भाविता की स्वीकृति होने पर भी पुरुषार्थ को सर्वोपरि स्थान दिया गया है। इस प्रकार के इनके ग्रन्थों में अद्भुत मनोविज्ञान को देखकर आश्चर्य होता है।

९ : क्षेमेन्द्र की कृतियाँ :—

'क्षेमेन्द्र' की कृतियों को काल क्रमानुसार इस प्रकार से रखा जाता है :—(क) बृहत्कथामञ्जरी, भारतमञ्जरी, रामायणमञ्जरी, (ख) पवनपञ्चाशिका और सुवृत्ततिलक (ग) विनयवल्ली, लावण्यवती, मुनिमतमीमांसा, नीतिलता, अवदानकल्पलता, अवसरसार, ललितरत्नमाला, मुक्तावलिकाव्यम्, वात्स्यायनसूत्रसार और औचित्यविचारचर्चा, (घ) पद्यकादम्बरी, शशिवंशकाव्यम्, देशोपदेश, नर्ममाला, चित्रभारत, कनकजानकी, अमृततरंग, चतुर्वर्गसंग्रह और कविकण्ठाभरण, (ङ) दर्पदलन, कलाविलास, समयमातृका, सेव्यसेवकोपदेश (च) दशावतारचरित और चारुचर्या।

कुछ लोग 'लोकप्रकाश' को भी उन्हीं की कृति बतलाते हैं। किन्तु यह मुगलकालीन किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा लिखित प्रतीत होती है। इसमें अनेक परसियन शब्द और मुसलमानी नाम जैसे—सलाम बन्दगी, ख्वाजा, मीर आदि उल्लिखित हैं। इनके अतिरिक्त कविकर्णिका, क्षेमेन्द्र-प्रकाश, दानप रिजात, नीतिकल्पतरु, राजावली, लोकप्रकाश, व्यासाष्टक आदि ग्रन्थ भी उनके द्वारा विरचित बतलाये गये हैं। 'कविकर्णिका' का उल्लेख स्वयं उन्होंने ही 'औचित्यविचारचर्चा' में किया है—(कृत्यापि काव्यालंकारो क्षेमेन्द्र कविकर्णिकाम्। १।२)।

(क) बृहत्कथामञ्जरी :—

'बृहत्कथामञ्जरी' 'गुणाढ्य' की बृहत्कथा का सार है। इसमें १८ लम्बक और ७५०० पद्य हैं। कवित्व की दृष्टि से यह सरसरग बड़ा ही पाण्डित्यपूर्ण है। किन्तु इसकी भाषा में दुर्बोधता और वर्णनों में जटिलता है। इसकी कथायें कहीं-कहीं बहुत ही संक्षिप्त कर दी गयी हैं। इन न्यूनताओं के रहते हुए भी जहाँ-जहाँ नारी सौन्दर्य और राजकुमारों के शौर्य-बलप्रदर्शन के प्रसंग आये हैं वहाँ-वहाँ 'क्षेमेन्द्र' ने बड़े ही मर्मग्राही एवं सरस वर्णन दिये हैं।

(ख) औचित्यविचारचर्चा :—

'औचित्यविचारचर्चा' में क्षेमेन्द्र लिखते हैं कि 'औचित्य' ही रस का जीवनभूत है—प्राण है—वह काव्यास्वादन में चमत्काराधायक है :—

औचित्यस्य चमत्कारकारिणश्चारुचर्वणे ।
रसजीवितभूतस्य विचारं कुरुतेऽधुना ॥ —औचि० ३

जो जिसके सदृश हो, जिससे मेल मिले उसे उचित कहते हैं और उचित का ही भाव 'औचित्य' है :—

उचितं प्राहुराचार्याः सदृशं किल यस्य यत् ।
उचितस्य च यो भावस्तदौचित्यं प्रचक्षते ॥ —वही० ७

यद्यपि 'औचित्य' की सर्वातिशायिनी महत्ता का प्रतिपादन क्षेमेन्द्र ने ही किया है । इन्होंने ही "औचित्यविचारचर्चा" लिखकर औचित्यरूप काव्यतत्त्व का व्याकरण स्पष्ट किया है। औचित्य को रससिद्ध काव्य का जीवित कहा है —"औचित्यं रससिद्धस्य स्थिरं काव्यस्य जीवितम् ।" (औचि० ५) तथापि औचित्य के सर्वथा नवीन उद्भावक के रूप में क्षेमेन्द्र को नहीं माना जा सकता । औचित्य की चर्चा नाट्याचार्य 'भरत' एवं 'आनन्दवर्धन' आदि आचार्यों ने भी की है और 'अनौचित्य' को रसभङ्ग का कारण माना है।[1] निश्चय ही क्षेमेन्द्र ने पूर्वाचार्यों के औचित्यविषयक अभिप्राय को देखा होगा। इतना होने पर भी वे अपने को "औचित्य" के नवीन उद्भावक के रूप में ही इङ्गित करते हैं :—

क्षेमेन्द्र इत्यश्यकाव्यकीर्तिश्चक्रे नवौचित्यविचारचर्चाम् ॥ —औचि०

ठीक है औचित्य को काव्यतत्त्व के रूप में सर्वोच्च स्थान देने में क्षेमेन्द्र अवश्य ही नवीन हैं।

(ग) 'कविकण्ठाभरण :—

'कविकण्ठाभरण' में उन्होंने कवित्वप्राप्ति, शिक्षा, चमत्कृति गुणदोषबोध, परिचयप्राप्ति का वर्णन किया है। इसमें पाँच सन्धियाँ हैं। एक-एक सन्धि में

१ अदेशजो हि वेषस्तु न शोभा जनयिष्यति ।
मेखलोरसि बन्धे च हास्यायैवोपजायते ॥ —नाट्यशास्त्र २३।६९
अनौचित्यादृते नान्यद्रसभङ्गस्य कारणम् ।
औचित्योपनिबन्धस्तु रसस्योपनिषत् परा ॥ आन० ॥

एक एक विषय का विश्लेषण किया गया है। इस एक ग्रन्थ से ही क्षेमेन्द्र के व्यक्तित्व एवं उनकी कृतियों के विषय में एकसाथ पर्याप्त सामग्री उपलब्ध होती है।

(घ) सुवृत्ततिलक :—

इस ग्रन्थ में छन्दविषयक विश्लेषण किया गया है। इस में तीन विन्यास (अध्याय) हैं। इस एक पुस्तक के अभ्यास से ही कोई भी व्यक्ति छन्दशास्त्र का मर्मज्ञ हो सकता है[2]।

(ङ) समयमातृका :—

क्षेमेन्द्र ने 'समयमातृका' की रचना १०५० ई० में की थी। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि उन्होंने इस प्रबन्ध का निर्माण उस समय किया था जब कि उनकी कवित्वशक्ति एवं अनुभव पूर्ण परिपक्व हो चुका था। इस ग्रन्थ के बाद उन्होंने केवल 'सेव्यसेवकोपदेश' 'दशावतारचरित' और 'चारुचर्या' की रचना कर अपनी जीवन-लीला समाप्त की थी। इस प्रकार यह प्रबन्ध कवि की समग्र प्रौढ़ि को एकसाथ समेटे हुए पाठकों के समक्ष अपनी चारुता का प्रदर्शन करता है।

'समयमातृका' आठ समयों में विभक्त छः सौ पैंतीस श्लोकों का एक प्रबन्ध-काव्य है। क्षेमेन्द्र ने इसके निर्माण का एकमात्र उद्देश्य वेश्याओं, कुट्टिनियों तथा विटों से श्रीमानों—धनिकों की सम्पत्ति रक्षा ही बतलाया है —*श्रीमता भूतिर-क्षायै रचितोऽयं स्मितोत्सवः*"। जैसा ऊपर निर्देश किया गया है, क्षेमेन्द्र की लेखनी का एकमात्र उद्देश्य सहृदय व्यक्तियों का मनोरञ्जन ही न होकर समाज में प्रसृत कुप्रवृत्तियों, अनाचारों, व्यभिचारों तथा वञ्चकता का उन्मूलन कर

---

१ संवत्सरे पञ्चविंशे पौषशुक्लादिवासरे।
श्रीमता भूतिरक्षायै रचितोऽयं स्मितोत्सवः ॥ समयमातृका ॥
यहाँ पर स्थानीय संवत्सर का निर्देश किया गया है, जिसके अनुसार १०५० खिस्ताब्द समयमातृका का काल है।

२ स० मू०

स्वस्थ वातावरण का निर्माण भी था। उन्होंने ग्राम के पटवारी से लेकर राज के दायों तक की एकसमान आलोचना की है—

चक्रोपारव्धसंघट्टैः कूटरथादिभिः ।
सादिष्टाभीष्टसंपत्तिर्जयत्याह जयपट्टकम् ॥ २१४२ ॥

कथावस्तु :—

'नवयौवना मन्दोन्मत्त वेश्या 'कलावती' और वृद्धा कुट्टिनी 'कङ्काली' के द्वारा फैंके गये जाल में—षड्यन्त्र में—तत्कालीन काश्मीर-भूमि के प्रसिद्ध धनी व्यवसायी "शङ्ख" का स्वल्पवयस्क बालक "चङ्कु" जाकर फँस जाता है। पहले तो ये दोनों उसका बहुत आदर-सम्मान करती हैं। किन्तु कुछ समय के अनन्तर, उत्तराधिकार में प्राप्तव्य उसकी सम्पूर्ण पैतृक सम्पत्ति को अधिकारपत्र (दस्तावेज) पर 'कलावती' के नाम से लिखवा कर एवं उसके पिता से भी एक लाख मुद्राएँ ठग कर, उसको फटा कम्बल का टुकड़ा पहना कर अपने घर से निकाल देती है।' इसके अतिरिक्त कथा की पृष्ठभूमि के रूप में 'कङ्काली' का सम्पूर्ण चरित, प्रदोषवर्णादर्शन, राग-भेद-वर्णन आदि भी बड़ी ही विदग्धता के साथ वर्णित हैं, जो कथावस्तु को अग्रसर करने में पूर्ण सहायक बनते हैं।

भाषा :—

'समयमातृका' की भाषा अधिकांश स्थलों पर क्लिष्ट एवं दुर्बोध है। इसके निर्माण में 'क्षेमेन्द्र' में वर्तमान कवित्वशक्ति की अपेक्षा उनका महान् कोश-ज्ञान अधिक सहायक हुआ है। बहुधा वे अप्रसिद्ध शब्दों का भी व्यवहार करते हैं, यथा :—तूस्ती, घरट्टमाला, द्विविर, अवरद्धिका, भाटी आदि। जहाँ एक ओर क्लिष्ट, अप्रचलित शब्दों के व्यवहार से 'समयमातृका' प्रबन्ध दुर्बोध हो गया हो, वहाँ कवि 'क्षेमेन्द्र' ने श्लोकों की विपर्यस्त एवं विकट रचनावली से उसकी दुर्बोधता का जटिलता से संयोग करा दिया है। उदाहरण के लिये यहाँ एक दो श्लोक पर्याप्त होंगे :—

(क) निष्कासितुं हृदयसंचितवीतवैरे
संदर्शितप्रकटकूटघनोपचारे।

लोभात्त्वयानपचयैः पुनरावृतेव
प्राप्तः किमु प्रसभमर्थवशादनर्थः ॥ १.२० ॥
(ख) कैर्नित्यसंभवनिजं वणिजं त्यजन्त्या
यान्त्या तृणज्वलनदीप्तिनियोगलक्ष्मीम् ।
नष्टे सुवर्णविभवे विरते पुरापि
जातस्तव स्तबकितोभयलाभभङ्गः ॥ १.२१ ॥

अतिशय पाण्डित्य से मण्डित 'समयमातृका' की भाषा से प्रारब्ध काव्य का निर्वाह भले ही हो गया हो किन्तु भाषा में न तो प्रवाह है और नहीं प्रसाद ही। जिस उद्देश्य को दृष्टि में रख कर यह प्रबन्ध लिखा गया उसकी भी भली-भाँति पूर्ति नहीं हो पाती। इसके लिये तो 'देशोपदेश' और 'नर्ममाला' की सरल शब्दावली अपेक्षित थी।

इतना होने पर भी 'समयमातृका' न केवल क्षेमेन्द्र के ही अपितु समस्त उपदेशात्मक हास्य-व्यङ्ग्य काव्यों में अनुपम है। अटवी में सरस मधुर निर्झर की भाँति कोमलकान्तपदावली से यह यत्र-तत्र-सर्वत्र पाठकों का पूर्ण मनोरंजन करती है। 'कलावती' के प्रसाधन को कवि एक ही श्लोक में कितनी मधुरता के साथ अभिव्यक्त करता है :—

कपोले कस्तूरी स्फुटकुटिलपत्राङ्कुरलिपि-
ललाटे कार्पूरं तिलकमलकालीपरिसरे।
तनौ लीना हेमद्युतिपरिचिता कुङ्कुमरुचिः
स तस्याः कोऽप्यासीज्ललितमधुरो मण्डनविधिः ॥३.१०॥

लौकिक उपमाओं एवं सूक्तियों के बहुधा प्रयोग तथा हास्य-व्यंग्यपूर्ण उक्तियों से भरपूर होने के कारण यह ग्रन्थ पाठकों को वही आनन्द प्रदान करता है, जो श्रावण के महीने में अरण्य पर्यटकों को। रसपेशल वर्णन का रसिक कवि हृदय-ग्राही अवसरों को हाथ से जाने नहीं देता, प्रत्युत वह उन्हें अपने काव्यकौशल से एक चिरन्तन सुन्दर वस्तु बना देता है।

औचित्य :—

शृङ्गारप्रधान इस प्रबन्ध के माध्यम से क्षेमेन्द्र ने तत्कालीन समाज में प्रसृत वेश्याओं के भीषण शोषण दुर्दमनीय धूर्तता, प्रबल वञ्चकता का नग्न-चित्र प्रस्तुत कर जनता का अप्रतिम उपकार किया था। उनको वेश्याओं की एक एक गति-विधि का सूक्ष्म ज्ञान था। उनका प्रधान उद्देश्य था वेश्याओं की कूटवागुरा से सामान्य अनुभवविहीन लोगों को सचेत करना। इसमें सन्देह नहीं कि क्षेमेन्द्र को पर्याप्त सफलता भी मिली है। किन्तु वैसा करने में कहीं-कहीं उन्हें ऐसी बातों का भी वर्णन करना पड़ा है जो व्यवहार के किञ्चिद् विपरीत प्रतीत होती हैं। पूर्णप्रौढा कामिनी 'कलावती' के साथ अत्यन्त मुग्ध, कान में बाली, कण्ठाभरण के मध्य रक्षा-सूत्र, चूलिका में माता के हाथ का सर्षप, पैर में कटक (कड़ा) धारण करने वाले शिशु की रतिक्रीडा का वर्णन कथमपि औचित्यपूर्ण नहीं कहा जा सकता। जो बालक शय्या पर स्वयं चढ़ने में असमर्थ होने के कारण चेटी के द्वारा चढ़ाया जाता है[1], जो 'बालक रोता है" ऐसा विचार कर स्वयं कलावती के द्वारा ओष्ठ एवं गालों पर काटा नहीं जाता[2] वही 'कलावती' के अधरबिम्ब को किस रस के कारण खण्डित करेगा? किस आनन्द के कारण उसकी तनुवल्लरी को नख से क्षत विक्षत कर देगा? किस सामर्थ्य और पटुता के कारण रात्रि भर अनवरत षट्पदी की भांति सम्भोग कर मतवाली कलावती को खेदक्लान्त करेगा[3]। ये बातें व्यवहार तथा अनुभव के सर्वथा विपरीत हैं। 'औचित्यविचारचर्चा' में 'रसौचित्य' एवं 'अवस्थौचित्य' के प्रतिपादक कवि का उक्त वर्णन किस भांति औचित्य की पदवी पर आरूढ हो सकता है? यदि वेश्याओं की समाज-विध्वंसक प्रवृत्ति तथा क्रियाओं को प्रदर्शित करना अभीष्ट था तो यह दूसरे प्रकार से भी हो सकता था। उक्त प्रसंग को पढ़ते समय मन में एक विलक्षण उद्वेजक भाव उत्पन्न होता है। इस एक प्रसङ्ग

१ आरोप्यते स चेट्या खट्वामसुप्रगां शनैः शिशुः । ८।४।
२ रोदिति शिशुरिति दयया यस्य न दशनक्षतं मया दत्तम् । ८।५।
३ खेदक्लान्तामकरोद्रजनातीते समारोहे । ८।७ ।

को छोडकर शेष वर्णन आकर्षक एवं मनोहारी हैं। अतिकृपण धनाढ्य दात' की कृपणता को व्यक्त करने के लिये उसके वेश एव व्यवहार का वर्णन पूर्ण उचित एव अभिप्रायाभिव्यंजक है¹। किसी कृपण का इतना सटीक और सूक्ष्म वर्णन विरल ही मिलता है।

हास्य —

क्षेमेन्द्र हास्य-कथा के तो अधीश्वर हैं। आलोचक इनके वर्णन और चरित्र चित्रण पर मुग्ध हो जाता है। हास्यकथा के लेखक के रूप मे ये अप्रतिम हैं। क्षेमेन्द्र की सिद्ध लेखनी पाठको पर चोट करना जानती है। हास्य का आघात बड़ा सधा हुआ होता है परन्तु इतनी सुन्दरता मे होता है कि समाज का नग्न चित्र हमारे सामने खुल कर खडा हो जाता है। यह हास्य विध्वंसक न होकर समाज के पुनर्निर्माण की भावना मे अनुप्राणित होता है। इनका प्रधान गुण व्यंग एव आलोचना करने मे है। इनका 'दर्पदलन' संस्कृत के हास्य-साहित्य की एक विशिष्ट रचना है। 'समयमातृका' मे भी क्षेमेन्द्र ने बीच-बीच मे हास्य का पुट भर दिया है। कुछ व्यक्तियो और वैद्यो की हँसी उन्होंने बडी ही उपयुक्त भाषा मे ली है। समाज मे फैले नीम-हकीम एव आतुर व्यक्तियो से भी मोल-भाव करके धन लेने वाले वैद्य इनकी लेखनी की तीक्ष्णता से बचे न थे, देखिये —

> सा मखे करभग्रीवा मातुर्माता स्थिरस्थिति ।
> व्याली गृहनिधानस्य हता वैद्याधमेन मे ॥
> योऽसावरसविद्याविद्वैद्य सद्य क्षयोद्यत ।
> दर्पादातुरवित्तेन वृद्धोऽपि तरुणायते ॥ १।२७–२८
> ततस्तदुपचारेण शिशौ जातज्वरे व्यधात् ।
> वैद्यदत्तोपवासा सा मत्स्यसूपपरिक्षयम् ॥

---

१ तैलमलकलङ्काङ्कितमूषकजग्धार्धतुम्पिकाविकट ।
जीर्णशीर्णावरणप्रलम्बपनकञ्चुकाञ्चलाजोल ॥ ८।५५
निजगृहदिवसपरिक्षयणाशातङ्कव्रहारोप्र ।
रज्जुपदितयुगु मनमार्जारोरोदनिर्दयप्रहृति ॥ ८।५७

पानीयं विनिवारणीयमहितं भक्तस्य वार्तैव का
द्वित्राण्येव दिनानि धात्रिदयया धात्रीरसः पीयताम् ॥
जीवत्वेष शिशुर्भजस्व विविधैरस्योत्सवैः संपदं
वैद्येनेति निवेद्यमानमकरोत् सा सर्वमेवाश्रुतम् ॥
२।७१–७२

किन्तु उपहाससम्राट् क्षेमेन्द्र कभी-कभी ऐसे भी उपहास को करते हैं, जो सर्वथा मर्यादा के विपरीत एवं उद्वेजक होता है। 'कङ्काली' अपने गतदिनों का वर्णन करती हुई कलावती से कहती है कि—"एक बार मैंने 'शङ्करवाहन' नामक एक कामुक की प्रसन्नता के लिये बनावटी रूप में कहा—"आपके आलिङ्गन से मेरी शरीरपीडा न जाने कहाँ चली गयी।" मेरे इस कथन को सुनकर वह यह कह कर रोता हुआ चला गया कि "मुझे अपने अङ्गों का यह चमत्कार नहीं ज्ञात था, अन्यथा शूल–शरीरपीडा–से मेरी माता मरने न पाती—

विदितोऽयं प्रकारश्चेदभविष्यदसंशयः।
तज्जनन्या वियोगो मे नाभविष्यद्विचेतसः॥" ४।६४

इसी एक स्थल को छोड़ कर 'समयमातृका' में उल्लिखित हास्य-व्यंग उपयुक्त एवं प्रभावकारी हुआ है।

परिसमाप्ति :—

पञ्चम समय के रागवर्णन के अतिरिक्त अन्य सभी वर्णन अवसरोचित एवं मर्यादित हैं। प्रत्येक 'समय' की कथायें एक दूसरे की पूरक हैं। कथा का प्रारम्भ भी बड़े ही नाटकीय ढंग से होता है। प्रथम अङ्क में 'कलावती' एवं वेश्यागुरु नापित 'कङ्कु' का वर्णन एवं उनकी बातचीत भव्य बन पड़ी है। किन्तु कथा की परिसमाप्ति कुछ इतनी शीघ्रता एवं सामान्य ढंग से होती है कि आगे कुछ चमत्कार एवं नवीनता की उत्सुकता वाले पाठक को प्रायः निराशा ही हाथ लगती है। अवान्तर बातों के अतिविस्तार के कारण मूलकथा में ही संकोच करना पड़ा है। किन्तु फिर भी एक छोटी सी बात पर इतना बड़ा प्रबन्ध

लिखना कम प्रशंसनीय नहीं है। सब कुछ एकसाथ मिला कर देखने पर "समयमातृका" एक रमणीय चित्ताकर्षक प्रबन्ध प्रतीत होता है।

१०. क्षेमेन्द्र के द्वारा उल्लिखित कवि :—

'क्षेमेन्द्र' ने अपनी कृतियों में, विशेषकर 'कविकण्ठाभरण', 'औचित्यविचार-चर्चा' एवं 'सुवृत्ततिलक' में, निम्नलिखित कवियों का नामोल्लेख एवं उद्धरण प्रस्तुत किया है :—

व्यास, उत्पलराज, तुंजीर, कलश, कालिदास, भास, हर्ष, रत्नाकर, परिमल, बल्लट, गौडीनक, राजशेखर, इन्दुराज, वीरदेव, साहिल, भट्टनारायण, दीपक, मुक्ताकण, श्यामल, भवभूति, लाटडिण्डीर, रिस्सो, यशोवर्मा, चक्र, वागुभट्ट, भर्तृमेण्ठ, अभिनन्द, माघ, परिव्राजक, गङ्गक (क्षेमेन्द्र ने इन्हें अपने उपाध्याय के नाम से लिखा है), भारवि, भर्तृहरि, चन्द्रक, शिवस्वामी, इन्द्रभानु, मयूर, मुक्तिकलश, दामोदरगुप्त, भट्टवाचस्पति, भट्टमल्लट, विद्यानन्द, मातृगुप्त, बाण, मालवरुद्र, कार्पटिक, प्रवरसेन, राजपुत्र मुक्तापीड, अमरुक (अमरक भी), आनन्दवर्धन, भट्टप्रभाकर, धर्मकीर्ति, भट्टलट्टन, कुमारदास, मालवकुवलय, वाराहमिहिर, नन्दिनक, भट्टउदयसिंह और राजपुत्र लक्ष्मणादित्य[1]।

'क्षेमेन्द्र' ने इन कवियों में से सर्वाधिक सम्मान व्यास के प्रति तदनु कालिदास एवं राजशेखर के प्रति अभिव्यक्त किया है।

'क्षेमेन्द्र' संस्कृत-साहित्य के सर्वदा प्रकाशमान नित्य नवीन हीरक हैं। न केवल संस्कृत-विद्वन्मण्डली ही 'क्षेमेन्द्र' की कृतियों से उपकृत है अपितु सम्पूर्ण मानवसमाज उनका चिरऋणी होकर श्रद्धावनत है।

विजया दशमी संवत् २०२४ वृन्दावन	विदुषामनुचर रमाशङ्कर त्रिपाठी

१. 'उदयसिंह' और 'लक्ष्मणादित्य' क्षेमेन्द्र के शिष्य थे।



समयमातृका

'प्रकाश' हिन्दीव्याख्योपेता

प्रथमः समयः

अनङ्गनाबलास्त्रेण जिता येन जगत्त्रयी ।
विचित्रशक्तये तस्मै नमः कुसुमधन्वने ॥ १ ॥

अशरीरी वायुरूप अस्त्र से त्रिजगती के विजेता, अद्भुत शक्ति वाले कामदेव को नमस्कार है ॥ १ ॥

टिप्पणी—कोई भी रथी अथवा अतिरथी अपने विजेतव्य को वश में करने के लिये कठिन कोदण्ड एवं वज्रसारमय अस्त्र का प्रयोग करता है। फिर भी वह अपने प्रतिद्वन्द्वी को वश में कर ही लेगा, यह भी निश्चित नहीं रहता। किन्तु कामदेव की अवस्था इसके ठीक विपरीत है। उसका सायक अथवा अस्त्र मूर्तिमान् नहीं है और उसका धनुष भी पुष्प का है। ऐसी भी अवस्था में वह छोटे मोटे समूह को नहीं अपितु त्रिजगती को अपने वश में कर लेता है, यही उसकी विचित्र शक्तिमत्ता है।

यस्या दुर्धरघोरनरकद्वारे निवृत्तये लक्ष्यते
क्षुब्धाम्भसि लोलनालशफरी कुत्रापि लोकत्रयी ।
तामज्ञानविशालकालकलनां तैस्तैः पुराणैरपि
प्रौढां देहिमनमोहनमयीं कालीं करालां नुमः ॥ २ ॥

सम्पूर्ण विश्व की परिसमाप्ति पर अर्थात् महाप्रलय की अवस्था में यह सम्पूर्ण त्रिलोकी जिसके दुर्धर्ष एवं भयंकर मुखगह्वर में, क्षुभित सागर में चपल मत्स्य शिशु की भाँति, कहीं पर अर्थात् एक कोणाश में दिखलाई पड़ती है, ऐसी महाभयंकर महाकाली को नमस्कार है। यह महाकाली परिभाषा एवं परिधिशून्य महाकाल को भी अपने वश में करने वाली है। विभिन्न पुराण इसी महाकाली, महाशक्ति, की स्तुति करते हैं और यही विभिन्न आत्मा को मोहित करनेवाली भी है अर्थात् यह काली ही आत्मा की स्वाभाविक प्रकृति पर अज्ञान का आवरण डालकर उसमें वैभिन्न्य एवं सुख दुःखादि की भावना उत्पन्न कर देती है, जिससे वह अपने सत्यस्वरूप को भी नहीं पहचान पाता ॥ २ ॥

क्षेमेन्द्रेण रहस्यार्थमन्त्रतन्त्रोपयोगिनी ।
क्रियते वाररामाणामियं समयमातृका ॥ ३ ॥

महाकवि 'क्षेमेन्द्र' के द्वारा वेश्या सुन्दरियों के प्रच्छन्न प्रयोजन को सिद्ध करनेवाले उपायों से सवलित यह 'समयमातृका' लिखी जा रही है ॥ ३ ॥

अस्ति स्वस्तिमतां विलासवसतिः संभोगभङ्गीभुवः
केलिप्राङ्गणमङ्गनाकुलगुरोर्देवस्य भृङ्गारिणः ।
कश्मीरेषु पुरं परं प्रवरताल्ब्धाभिधानिश्रुतं
सौभाग्याभरणं महीवरतनोः संकेतसद्म श्रियः ॥ ४ ॥

कश्मीर प्रदेश में अपने नाम को अन्वर्थक करने वाला अर्थात् अपने नाम के अनुरूप ही विख्यात परमश्रेष्ठ 'प्रवरपुर' नामक एक नगर है। यह नगर श्रीमानों के विहार का स्थल, पृथिवी की संभोगभङ्गी, सुन्दरी-समूह के कुलगुरु कामदेव का क्रीडाप्राङ्गण, पृथिवी का सौभाग्यसूचक आभरण और लक्ष्मी अथवा शोभा का संकेतस्थल है ॥ ४ ॥

टिप्पणी—जिस प्रकार एक अभिसारिका को अपने प्रेमी से मिलने के लिये संकेतस्थल में जाने में तथा अधिक समयतक प्रेमी के साथ वहाँ रहने में आनन्द आता है उसी प्रकार लक्ष्मी अथवा शोभा भी वहाँ रहने में आनन्द का अनुभव करती है।

यत्र त्रिनेत्रनेत्राग्नित्रस्तस्त्यक्त्वा जगत्त्रयीम्।
पौरस्त्रीत्रिवलीकूले वसत्यममनायकः ॥ ५ ॥

जहाँ पर त्रिनेत्र अर्थात् भगवान् शङ्कर की नेत्राग्नि से भयभीत होकर, अन त्रिलोकी को छोड़कर, कामदेव पुरवासिनी सुन्दरियों की त्रिवली (उदर के मध्य की तीन रेखाओं) के तट पर निवास करता है ॥ ५ ॥

टिप्पणी—त्रिवली के तट भाग पर कामदेव के निवास को बतलाने से कामोद्दीपक त्रिवली की प्रगाढता सूचित की गई है।

तत्राभूदभिभूतेन्दुद्युतिः कंदर्पदर्पभूः।
कान्ता कलावतीनाम वेश्या वश्याञ्जनं दृशोः ॥ ६ ॥

उसी नगर में चन्द्रमा की कान्ति को भी तिरस्कृत करनेवाली, कामदेव के दर्प की प्रसवित्री, अपने नेत्रों में लगे अञ्जन की सुन्दरता से लोगों को अपने वश में करनेवाली 'कलावती' नाम की अति सुन्दरी वेश्या रहती थी ॥ ६ ॥

कुचयोः कठिनत्वेन कुटिलत्वेन या भ्रुवोः।
नेत्रयोः श्यामलत्वेन वेश्यावृत्तमदर्शयत् ॥ ७ ॥

कलावती अपने स्तनों की कठोरता, भृकुटि की कुटिलता, तथा नेत्रों की श्यामलता से ही अपने वेश्याव्यापार को प्रदर्शित करती थी अर्थात् उसके शरीर-संस्कार से ही यह प्रतीति होती थी कि यह सुन्दरी वेश्या व्यापार करने वाली है ॥ ७ ॥

सा हर्म्यशिखरारूढा कदाचिद्गणिकागुरुम्।
कामिनां नर्मसुहृदं ददर्श पथि नापितम् ॥ ८ ॥

एक समय जब कि वह अपने प्रासाद के पृष्ठ (छत) पर स्थित थी, वेश्याओं के गुरु, कामिनियों का हँसी मजाक से मनोरञ्जन करने वाले नापित को मार्ग में जाते हुये देखा ॥ ८ ॥

श्मश्रुराशीचितमुखं काचकाचरलोचनम् ।
पीवरं तीरमण्डूकैर्मार्जारमिव शारदम् ॥ ९ ॥

उसका मुख श्मश्रुओं से परिव्याप्त था, उसकी आँखें काँच की तरह चमकीली थीं, शरद्काल में जलाशय के तट के मण्डूकों को खाकर मोटे मार्जार की भाँति वह स्थूलकाय था ॥ ९ ॥

विटानां केलिपटहं तप्तताम्रघटोपमम् ।
दधानं रोममालान्तं स्थूलखल्वाटकर्परम् ॥ १० ॥

कवि यहाँ उस नापित के शिर (कर्पर) का वर्णन करते हुये कहता है कि उसका विस्तीर्ण एवं खल्वाट (चँदुला) शिर कामुक जनों के लिये केलिपटह (खिलवाड अथवा हँसी मजाक के समय बजाया जाने वाला नगाडा) था। उसकी आकृति आग में तपे हुये ताम्र के घट के समान थी। एकमात्र उसके किनारे किनारे रोम की पङ्क्ति अवशिष्ट रह गई थी ॥ १० ॥

ताम्बूलष्ठीवनत्रासादुपरि क्षिप्तचक्षुषम् ।
आनिनाय तमाहूय सा नेत्राञ्चलसंज्ञया ॥ ११ ॥

'हर्म्य के ऊपर से कोई मुझपर पान न थूक दे' इस भय से ऊपर की ओर देखते हुए उस नापित को कलावती नामक वेश्या ने नेत्र के इङ्गित से ऊपर अपने पास बुलाया ॥ ११ ॥

स समभ्येत्य तां दृष्ट्वा चिन्तानिश्चललोचनाम् ।
पप्रच्छ विस्मितः कृत्वा नर्मप्रणयसंवृतिम् ॥ १२ ॥

ऊपर पहुँचकर उस नापित ने चिन्ता के कारण निश्चल नेत्र वाली कलावती को देख कर अपने हास परिहास एवं प्रेमालाप को छिपाते

हुए (अर्थात् उन्मनस्क कलावती के साथ हँसी मजाक का अवसर न समझकर एतत्कार्योन्मुख अपने आकार एवं भावों को छिपाते हुए) आश्चर्यपूर्वक उससे पूछा ॥ १२ ॥

ध्यानालम्बनमाननं करतले व्यालम्बमानालकं
लुप्तव्यञ्जनमञ्जनं नयनयोर्निःश्वासतान्तोऽधरः।
मौनक्लीबनिलीनकेलिविहगं निद्रायमाणं गृहे (?)
वेषः प्रोषितयोषितां समुचितः कस्मादकस्माच्च ॥ १३ ॥

किसी बात की चिन्ता में तल्लीन, ऊपर लटकनेवाले केशों से व्याप्त अपने मुख को तुमने करतल (हथेली) पर क्यों रक्खा है? तुम्हारे नेत्रों का अंजन क्यों मिट गया है? उष्ण निश्वास से तुम्हारा अधर क्यों मलिन अथवा कृश हो गया है? केलि विहग (केलिरूपी विहग अथवा केलि के लिये पालित पक्षी। यहाँ पर प्रथम अर्थ ही प्रसगात् प्रधान अर्थ है।) भी गृह (देहरूपी घर अथवा घर) में क्यों निःशब्द, निष्क्रिय शान्त अतः निद्रापरवश दिखलाई पड़ रहा है? क्यों अकस्मात् तुमने प्रोषितभर्तृका स्त्रियों (जिन स्त्रियों के पति परदेश गये हों) की भाँति अपना वेष बना लिया है? ॥ १३ ॥

टिप्पणी—हथेली पर मुख रखने से चिन्ता की वर्तमानता, नेत्राञ्जन के मिटने से अत्यधिक रुदन, अधर की मलिनता से हृदय के सन्ताप, केलि विहग की निःस्तब्धता से परिस्थिति की गम्भीरता एवं प्रोषितभर्तृकाओं के समान वेष से उद्विग्नता एवं व्यापारप्रतिघात की सूचना मिलती है।

किं मेखला मदनमन्दिरभूर्नितम्बे
सुश्रोणि नैव नत गायति मङ्गलानि।
अङ्गं कृशाङ्गि किमनङ्गयशःप्रमेण
कर्पूरचन्दनरसेन न लिप्तमेतत् ॥ १४ ॥

हे सुन्दर कटितट वाली कामिनी! खेद की बात है कि तुम्हारे नितम्ब

पर कामदेव की बन्दिवधू अर्थात् कामदेव के यश को गानेवाली बन्दिनी स्त्री रूप मेखला (करधनी) क्यों नहीं मङ्गल का गान कर रही है ? हे कृशाङ्गी ! कामदेव के यश की तरह कान्ति वाले अर्थात् धवल कर्पूर-मिश्रित चन्दन के रस से तुम्हारे अङ्ग क्यों नहीं लिप्त हैं अर्थात् तुम्हारे अङ्गप्रसाधन के न करने का कारण क्या है ? ॥ १४ ॥

प्राप्तं पुरः प्रचुरलाभममंस्पृशन्ती
भाविप्रभूतविभवाय कृताभियोगा ।
किं केनचित्सुचिरसेवननिष्फलेन
मिथ्योपचारवचनेन न वञ्चितासि ॥ १५ ॥

भविष्य में प्राप्त होने वाली प्रभूत सम्पत्ति के लिये प्रयत्नशील अत सम्मुख प्राप्त प्रचुर लाभ को भी न छूती हुई अर्थात् सामने आए हुए पर्याप्त धन को भी ठुकराती हुई तुम बहुत दिन तक सेवन करने के बाद भी निष्फल सिद्ध होने वाले किसी के व्यर्थ चाटुकारितापूर्ण वचनों से क्या नहीं वञ्चित की गई हो ? अर्थात् अवश्य ही तुम किसी चाटुकार के द्वारा ठग ली गई हो ॥ १५ ॥

लोभाद्गृहीतमविभाव्य भयं भवत्या
दर्पात्प्रदर्शितमशङ्कितया सखीभिः ।
दत्तं तवाप्रतिममाभरणं नृपार्हं
चौरेण किं प्रलपितं नगराधिपाग्रे ॥ १६ ॥

किसी प्रेमी के द्वारा प्रदत्त, राजाओं (धनिकों) के पहनने के योग्य, अप्रतिम, आभूषणों के विषय में, जिन्हें कि तुमने लोभ के कारण बिना किसी भय की चिन्ता किये लेकर दर्पवश निःशङ्क होकर अपनी सखियों के समक्ष दिखलाया था, किसी चोर ने नगर के अधिपति के समक्ष कह दिया है क्या ? ॥ १६ ॥

टिप्पणी—सखियों के समक्ष आभूषणों के दिखलाने में 'कलावती' नामक

वेश्या का दर्प यह था कि 'देखो, मेरा सौन्दर्य इतना अप्रतिम है कि बड़े बड़े धनाढ्य व्यक्ति इतना बहुमूल्य वस्तुयें मुझे सनपत करते हैं। ऐसी वस्तुयें तुम लोगों के लिये सर्वथा दुर्लभ हैं।

दानोद्यतेन धनिकेन विशेषमङ्गा-
त्सक्तोऽयमित्यथ शनैरवसायितेन।
लब्धान्तरस्वजनमित्रविरोधितेन
किं त्वत्तिरस्कारकुपितेन कृतो विवाहः ॥ १७ ॥

तुम्हारे साथ विशेष संसर्ग के कारण "य इस वेश्या में विशेष आसक्त है" इस बात के शनैः शनैः निश्चित हो जाने पर अवसरोपलब्धि (छिद्रोपलब्धि) के अनन्तर अपने मित्रों एवं स्वजनों से विरोधित और उसी समय संयोगवशात् तुम्हारे तिरस्कार से भी कुपित, तुमको धनदान करने में सर्वदा तत्पर रहनेवाले किसी तुम्हारे प्रेमी धनिक ने विवाह कर लिया है क्या ? ॥ १७ ॥

टिप्पणी—प्रेमी धनिक के साथ उसके मित्रों आदि के विरोध का कारण (अवसर अथवा छिद्र) एक ही वेश्या से उन सभी का प्रेम करना समझना चाहिये।

दत्त्वा सकृत्तनुविभूषणमंशुकं वा
यद्वानुबन्धविरलीकृतकामुकेन।
यक्षेण सर्वजनतासुखभूः प्रपेव
तीक्ष्णेन भीरु किमु केनचिदावृतासि ॥ १८ ॥

हे भीरु ! एक बार स्वल्प आभूषण अथवा वस्त्र प्रदान करके पुनः प्रेमव्यापार को विरल करनेवाले अर्थात् प्रेम व्यापार को कम करने तुम्हें धन दान कम करने वाले किसी तीक्ष्ण (कर्कश एवं प्रबल) कामुक व्यक्ति के द्वारा, सम्पूर्ण जनता को सुख देने वाली यक्षावृत प्रपा की भाँति; आवृत हो क्या ? ॥ १८ ॥

वित्तप्रदानविफलेन पलायमाना
कौटिल्यचारुचटुला शफरीव तोये।
गूढं वशीकरणचूर्णमुचा कचेषु
किं केनचिन्न कुहकेन वशीकृतासि ॥ १९ ॥

अपनी ऋजुता के कारण सुन्दर प्रतीत होने वाली चञ्चल, जल में इतस्ततः पलायमान मछली की भाँति भागनेवाली (प्रेम एवं काम व्यापार से विरत होने वाली) तुम क्या धन देने में असमर्थ अतः तुम्हारे कचों में गुप्त अभिप्राय से सवलित वशीकरणचूर्ण (वशीकरण मन्त्र से सिद्ध ऐसा चूर्ण जिसके शिर पर रखने मात्र से व्यक्ति प्रयोक्ता के वश में हो जाता है) को छोड़ने वाले किसी कामुक के द्वारा वश में नहीं की गई हो? अर्थात् अवश्य ही ऐसे व्यक्ति के द्वारा वश में की गई हो ॥ १६ ॥

निष्क्रासितुं हृदयसंचिततीव्रवैरे
संदर्शितप्रकटकूटधनोपचारे ।
लोभात्त्वयानपचयैः पुनरावृतेव (?)
प्राप्तः किमु प्रसभमर्थवशादनर्थः ॥ २० ॥

किसी के प्रकटरूप से निष्फल धनोपचार (धन का प्रदान) के दिखलाने पर अर्थात् तुम्हें धन प्रदान करने में असफल रहने पर अथवा प्रकट रूप से कपटपूर्वक धनोपचार (धन देने का लालच आदि) के दिखलाने पर उस व्यक्ति को अपने घर एवं सम्पर्क से निकालने के लिये उसके प्रति अपने हृदय में तीव्र वैर सञ्चित करने वाली हे वेश्ये! लोभ का संवरण न कर सकने के कारण अर्थात् धन-प्राप्ति की आशा से निर्धन अथवा स्वल्पधन व्यक्तियों से घिरी हुई सी होकर क्या तुम्हारे द्वारा हठवशात् पुनः अनर्थ प्राप्त किया गया है? ॥ २० ॥

कैर्नित्यसंभवनिजं वणिजं त्यजन्त्या
यान्त्या तृणज्वलनदीप्तिनियोगलक्ष्मीम् ।
नष्टे सुवस्त्रविभवे विरते पुराणे
जातस्तव स्तवकितोभयलाभभङ्गः (?) ॥ २१ ॥

किन्हीं कारणों से, सर्वदा वर्धनशील वणिक् का त्याग करनेवाली और अन्य लोगों के प्रति, जिनमें कि प्राचीन प्रेमी जन भी थे, तृणाग्नि के समान दाहकता की शोभा को धारण करने वाली अर्थात् तृण की भाँति क्षण भर के लिये प्रज्वलित (क्रुद्ध) होकर उन्हें भी विरत कर देने वाली तुम्हारे द्वारा, सुन्दर वस्त्र समूह के नष्ट हो जाने पर और प्राचीन वस्त्र के विरत अर्थात् परित्यक्त हो जाने पर जिस प्रकार व्यक्ति दोनों लाभ से वञ्चित रह जाता है उसी प्रकार तुम्हारे ही स्तवकित अर्थात् पुष्पगुच्छ की भाँति विकसित एवं प्राप्त उभयविध लाभ का विनाश किया गया है क्या ? ॥ २१ ॥

सिद्धः प्रयत्नविभवैः परितोषितस्य
दातुं समुद्यतमतिः स्वयमर्थशास्त्रम् ।
नीतस्तव प्रचुरमत्सरयान्यया किं
गेहान्निधिर्बहुधनः स्वसखीमुखेन ॥ २२ ॥

तुम्हारे द्वारा प्रदत्त धन एवं वस्त्रादि के दान से सन्तुष्ट हुये व्यक्ति के विविध प्रयत्नों से तुम्हारी अनुकूलता को प्राप्त हुआ अर्थात् तुम्हारे प्रेम-पाश में आबद्ध हुआ अतः स्वयमेव विशाल वैभव को तुम्हें देने के लिये तत्पर विचार वाला अत्यधिक सम्पत्तिशाली व्यक्ति, तुम्हारे साथ अत्यधिक मत्सर करने वाली अन्य किसी स्त्री अथवा वेश्या के द्वारा अपनी सखियों के माध्यम से तुम्हारे घर से अर्थात् तुम्हारे प्रेम-पाश से छुड़ा कर अपने पास बुला लिया गया है क्या ? ॥ २२ ॥

किं मानसादपदवीमतिनाह्य कष्टां
　　लब्धाधिकारविभवेन विवर्जितासि ।
किं मूर्च्छितासि विरतासि सुखोज्झितासि
　　ध्यानावधानवधिरासि निमीलितासि ॥ २३ ॥

अत्यधिक कष्ट देने वाले दुःखपूर्ण मार्गों (उपायों) के अवलम्बन के अनन्तर प्राप्त हुये, अखण्ड वैभवशाली, किसी व्यक्ति के द्वारा तुम परित्यक्त कर दी गई हो क्या ? अर्थात् जिस धनी व्यक्ति को तुमने अपने प्रेम पाश में फँसाने के लिये विविध कष्टपूर्ण उपायों का अनुष्ठान किया था क्या उसने तुम्हें छोड़ दिया है ? क्या तुम मूर्च्छित हो गई हो ? अथवा किसी कल्याणकारी कार्य से विरत हो गई हो ? अथवा सुख से विरत कर दी गई हो ? अथवा किसी प्रियतम व्यक्ति अथवा वस्तु के ध्यान में अत्यधिक लीन हो जाने से बधिर हो गई हो ? अथवा जान बूझकर निमीलित (व्यापार से विरत) हो गई हो ? ॥ २३ ॥

टिप्पणी—यहाँ यह ज्ञातव्य है कि वेश्यायें धनिकों को आकृष्ट कर अपने प्रेम पाश में आबद्ध करने के लिये विविध उपायों एवं कपट व्यापारों का अवलम्बन करती हैं ।

अप्युद्दामव्यसनसरणेः संगमे कामुकानां
　　भद्रं भद्रे भुवनजयिनस्तवकलाकौशलस्य ।
अप्युत्साहप्रचुरसुहृदः कामकेलीनिकामाः
　　प्रौढोत्साहास्तव सुवदने स्वस्तिमन्तो विलासाः ॥२४॥

हे भद्रे ! कामुक व्यक्तियों के अत्यधिक प्रवृत्त सम्भोग रूप व्यसन की पद्धति (तरीका) के संगम के समय अर्थात् कामुक व्यक्ति के साथ संगम के समय प्रदर्शित, भुवन को भी वश में करने वाले तुम्हारे कला कौशल (हावभाव आदि) तो मङ्गलपूर्वक हैं न ? हे सुवदने ! उत्साह के प्रबल सहायक एवं उत्साह से पूर्ण प्रौढि प्रदान

करने वाले काम क्रीडा के आश्रयभूत तुम्हारे विलास तो स्वस्तिमान् हैं न ? ॥ २४ ॥

इत्यादि तेन हितसंनिहितेन पृष्टा

स्पष्टा भृशं विभवभङ्गभयोद्भवेन ।

सा तं जगाद सुखदुःखसहायभूतं

चिन्ताविशेषविवशा बहुशः श्वसन्ती ॥ २५ ॥

हितसाधन के लिये उपस्थित उस नापित के द्वारा इस प्रकार पूछी गई, सम्पत्ति विनाश के भय से अत्यधिक विह्वल, चिन्ताविशेष से विवश, 'कलावती' नामक वेश्या ने लम्बे लम्बे उच्छ्वास भरते हुए सुख दुःख में सहायक उस नापित से कहना प्रारम्भ किया ॥ २५ ॥

शृणु कङ्क ममानन्तां चिन्तां संतापकारिणीम् ।

ययाहमवसीदामि ग्रीष्मग्लानेव मञ्जरी ॥ २६ ॥

हे कङ्क ! अत्यधिक सन्ताप को देने वाली मेरी निरवधिक चिन्ता को सुनो। इसी चिन्ता के कारण मैं, ग्रीष्म के सन्ताप से मलिन पुष्पमञ्जरी की भाँति, अत्यधिक खिन्न हो रही हूँ ॥ २६ ॥

सा सखे करभग्रीवा मातुर्माता स्थिरस्थितिः ।

व्याली गृहनिधानस्य हता वैद्याधमेन मे ॥ २७ ॥

हे मित्र ! करभ की भाँति गर्दनवाली, स्थिरस्थिति अर्थात् चलने-फिरने में असमर्थ, घर के खजाने के समीप स्थित सर्पिणी की भाँति हमारे घर की रक्षाकर्त्री, मेरी माँ की माँ अर्थात् मेरी नानी उपचार करनेवाले वैद्याधम के द्वारा मार डाली गई ॥ २७ ॥

· योऽसावनयविद्याविद्वैद्यः सद्यः क्षयोद्यतः ।

दर्पादातुरवित्तेन वृद्धोऽपि तरुणायते ॥ २८ ॥

अनीति विद्या का वेत्ता, रुग्ण व्यक्ति के विनाश के लिये तत्काल उद्यत जो यह वैद्य है, यह वृद्ध होता हुआ भी दर्प के कारण गृहीत

आतुर व्यक्तियों की सम्पत्ति के अनायास उपभोग से तरुण सा हो गया है अर्थात् मरणासन्न लोगों के कुटुम्ब से यथेच्छ धन लेकर और उसका उपभोग कर खूब हृष्ट-पुष्टाङ्ग हो गया है ॥ २८ ॥

टिप्पणी—कलावती के कहने का भाव यह है कि उक्त वैद्यायन ने अनुपयुक्त चिकित्सा से मेरी नानी का वध कर डाला।

तेन रोगधराख्येन दत्ता रसवती मम।
त्रिभागशेषतां नीता लौल्यलोभोद्गतात्तया ॥ २९ ॥

उस रोगधर (वैद्य अथवा किसी अन्य व्यक्ति) ने मुझे रानसी भोजन लाकर दिया। मेरे खाने के पूर्व ही लोभ के वशीभूत होकर मेरी नानी ने उसका अधिकांश भाग (दो भाग) खा लिया। इस प्रकार रुग्णा उस वृद्धा की हालत अधिक चिन्ताजनक हो गई ॥२९॥

टिप्पणी—'रसवती' रसोई घर को कहते हैं। किन्तु प्रसङ्गवश उसका अर्थ 'उत्तम अथवा रानसी भोजन' करना ही ठीक होगा।

प्रपञ्चवञ्चनावैरात्मा तेनातुरतां गता।
काञ्चन्या पञ्चतां नीता पश्यन्ती काञ्चनं जगत् ॥ ३० ॥

इस कारण से अर्थात् अत्यधिक भोजन खा लेने से आतुरता (मरणासन्नता) को प्राप्त हुई अतः सम्पूर्ण जगत् को सुवर्णनिर्मित सा देखती हुई (बहुधा मरणासन्न व्यक्तियों की इसी प्रकार की अवस्थायें हुआ करती हैं) मेरी नानी काञ्चनी (दासीविशेष) के द्वारा प्रपञ्च एवं वञ्चना रूपी वैर से मार डाली गई ॥ ३० ॥

टिप्पणी—काञ्चनी उस रुग्णा वृद्धा की सेवा में नियुक्त एक दासी थी। उसका कार्य रुग्णा की सेवा के अतिरिक्त उसको अनुचित वस्तुओं के खाने से रोकना भी था। किन्तु असावधानी के कारण वह ऐसा न कर सकी और वृद्धा ने भोजन, जो उसके लिये कुपथ्य था, खा लिया। बाद में पूछने पर भय के कारण काञ्चनी ने 'कलावती' को ठगने के लिये बात बनाकर कुछ उत्तर दे दिया था। यही उसका 'प्रपञ्च' एवं वञ्चना वैर था।

हिरण्यवर्णां वसुधां तस्मिन्नन्तक्षणेऽपि सा ।
दृष्ट्वा मामब्रवीद्वत्से गृह्यतां गृह्यतामिति ॥ ३१ ॥

उसने (मेरी नानी ने) उस अन्तक्षण में भी अर्थात् मृत्यु की वेला में भी पृथिवी को सुवर्णवर्णा देखकर मुझसे कहा—"वत्से ! इसे ग्रहण करो, ग्रहण करो" ॥ ३१ ॥

टिप्पणी—मुमूर्षु को मरने के समय में वे ही सब दृश्य दिखलायी पड़ते हैं जिनका अभ्यास उसे अपने जीवन में रहता है ।

ततस्तस्यामतीतायां गृहं मे शून्यतां गतम् ।
पराभवास्पदीभूतं कामुकैः स्वेच्छया वृतम् ॥ ३२ ॥

उनके बाद, उस वृद्धा के इस संसार से विदा हो जाने पर शून्यता को प्राप्त हुआ अर्थात् रक्षकविहीन मेरा घर तिरस्कारास्पद हो गया है । कामुक पुरुषों के द्वारा यह सर्वदा घिरा रहता है ॥ ३२ ॥

टिप्पणी—प्रायः व्यवहार में यह देखा जाता है कि कोई भी तरुणी वेश्या अपनी किसी सम्बन्धी स्त्री, जो कि वृद्धा होती है, से सर्वदा रक्षित रहती है । यह वृद्धा ही तरुणी वेश्या से लोगों के मिलने-जुलने का कार्यक्रम आदि बनाती है । किसी रक्षिका के बिना सुन्दरी तरुणी वेश्या का घर समाज के अवाञ्छनीय तत्त्वों से सर्वदा उपद्रवग्रस्त बना रहता है ।

रिक्तः शक्तो न निर्याति नाभ्येत्यवसरं धनी ।
शून्यशालेव पथिकैर्निरुद्धा कामुकैरहम् ॥ ३३ ॥

समर्थ अर्थात् शरीर से बलशाली निर्धन व्यक्ति मेरे घर से निकालने पर भी नहीं निकलता है, इस प्रकार द्रव्य देने में समर्थ जो धनी व्यक्ति हैं, वे मेरे पास आने का अवसर ही नहीं पाते । जिस प्रकार पथिकों के द्वारा मार्ग की धर्मशाला स्वेच्छया परिव्याप्त रहती है, उसी प्रकार मैं भी कामुक व्यक्तियों से सर्वदा निरुद्ध रहती हूँ ॥३३॥

तस्माद्विदेशं गच्छामि नेच्छाम्युच्छृङ्खलां स्थितिम् ।
कथं रक्तविरक्तानां तुल्यां स्वायत्ततां सहे ॥ ३४ ॥

अत मैं विदेश जाना चाहती हूँ। यहाँ के उच्छृंखल वातावरण में रहना मुझे कथमपि पसन्द नहीं है। भला बतलाइये कि मैं रक्त (अपने प्रति वस्तुत: अनुराग रखने वाले) एवं विरक्त (अनुरागविहीन एकमात्र संभोगेच्छु) जनों के समान अधिकार [स्वायत्तता] को किस प्रकार सहन कर सकती हूँ ? ॥ ३४ ॥

इत्युद्वाष्पदृशस्तस्याः प्रलापं वृद्धनापितः ।

आकर्ण्य तां समाश्वास्य सोच्छ्वासं प्रत्यभाषत ॥ ३५ ॥

अश्रुपूर्ण नेत्रों वाली उस वेश्या के इस प्रकार के प्रलाप को सुनकर उस वृद्ध नापित ने उसे सन्तोष [ढाढस] देकर सन्ताप के साथ कहना प्रारम्भ किया ॥ ३५ ॥

भवत्या वित्तलोभेन निर्विचारतया परम् ।

भिषग्दुष्टभुजंगोऽसौ स्वयमेव प्रवेशितः ॥ ३६ ॥

बिना परिणाम के विचार के ही, एकमात्र धन की लोलुपता के कारण आपने स्वयं ही दुष्ट एवं कामुक अथवा दुष्ट एवं भुजंग की तरह कुटिल इस वैद्य को अपने घर में प्रविष्ट कराया है ॥ ३६ ॥

जनन्यो हि हतास्तेन वेश्यानां पथ्ययुक्तिभिः ।

किं कुट्टनीकृतान्तोऽसौ वैद्यो न विदितस्तव ॥ ३७ ॥

इस दुष्ट वैद्य ने पथ्य की युक्तियों से वेश्याओं की अनेक माताओं (ये मातायें ही उन वेश्याओं की रक्षिका थीं) को मार डाला है। क्या कुट्टनियों के यमराज इस इस वैद्य के स्वभाव को अभी तक तुमने यथार्थरूप से नहीं जाना था ? ॥ ३७ ॥

स रोगिमृगवर्गाणां मृगयानिर्गतः पथि ।

इत्यादिभिः स्तुतिपदैर्विटचेटैः प्रणम्यते ॥ ३८ ॥

'यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च ।
वैवस्वताय कालाय सर्वप्राणहराय च ॥ ३९ ॥'

जब वह वैद्याधम रोगिस्वरूप मृगसमूह की मृगया (शिकार) के लिये अपने घर से निकलता है, तब मार्ग में विटों एवं चेटों (व्यभिचारियों) के द्वारा "यम, धर्मराज, मृत्यु, अन्तक, वैवस्वत, काल एवं सबके प्राणों का हरण करने वाले ! आपको नमस्कार है" इत्यादि स्तुति वाक्यों से प्रणाम किया जाता है ॥ ३८-३९ ॥

टिप्पणी—यहाँ विटों एवं चेटों के उक्त कथन से वैद्य की असफलता एवं प्राणघातिनी चिकित्सा-पद्धति को सूचित किया गया है। यही कारण है कि उसे यमराज के बहुत से नामों के द्वारा संबोधित किया गया है।

अधुना दुःखमुत्सृज्य मनः स्थिरत्वं विधीयताम् ।
कृत्रिमः क्रियतां गेहे रक्षार्थं जननीजनः ॥ ४० ॥

इस समय दुःख का परित्याग कर अपने मन को स्थिर कीजिये और गृह की रक्षा के लिये 'कृत्रिम अर्थात् वेतन पर काम करने वाली किसी जननी (कुट्टिनी) की नियुक्ति कीजिये ॥ ४० ॥

व्याघ्रीव कुट्टनी यत्र रक्तपानामिषैषिणी ।
नास्ते तत्र प्रगल्भन्ते जम्बुका इव कामुकाः ॥ ४१ ॥

जिस वेश्या के घर में रक्त पान एवं मांस-भोजन की इच्छावाली व्याघ्री की भाँति कुट्टिनी नहीं रहती वहाँ जम्बुकों (सियारों) की भाँति कामुकजन धृष्टता करते ही हैं ॥ ४१ ॥

यत्र तत्र निमग्नानां वेश्यानां जननीं विना ।
संध्ययोर्दिवसस्यापि मुहूर्तार्धस्य न क्षणः ॥ ४२ ॥

जननी (कुट्टिनी) के बिना रहने वाली अतः जहाँ-तहाँ (पात्रा-पात्र का बिना विचार किये जिस किसी जन से) प्रेम व्यवहार करने वाली वेश्याओं का, दिन की दोनों सन्ध्याओं की भाँति अर्द्धमुहूर्त का

भी क्षण (दिन के पक्ष में समय एवं वेश्या के पक्ष में विश्राम) नहीं होता ॥ ४२ ॥

टिप्पणी—यहाँ यह तात्पर्य है कि दोनों में से किसी का संध्या का अर्द्ध क्षण भी दिन के साथ नहीं परिगणित किया जाता।

न भवत्येव धूर्तस्य वेश्यावेश्मन्यमातृके ।
चुल्लीसुप्तस्य हेमन्ते मार्जारस्येव निर्गमः ॥ ४३ ॥

मातृविहीन (कुट्टिनीरहित) वेश्या के घर से धूर्त (निर्धन कामुक) उसी प्रकार से जल्द नहीं निकलते जिस प्रकार हेमन्त ऋतु में किञ्चिदुष्ण चुल्ली (भोजन पकाने के लिये मृत्तिकानिर्मित चूल्हा) में सोया हुआ मार्जार (बिडाल) भगाने पर भी शीघ्र नहीं निकलता ॥ ४३ ॥

प्रविष्टा कुट्टनीहीनगृहं क्षीणपटा विटाः ।
गाथाः पठन्ति गायन्ति व्ययद्रविणमर्थिताः ॥ ४४ ॥

कुट्टिनीविहीन वेश्या के घर में प्रविष्ट हुये क्षीणवस्त्रधारी (मलीन-वस्त्रधारी अथवा जीर्णवस्त्रधारी) विट (कामुक) जब उनके द्वारा निर्धारित धन (यह धन संगीत अथवा संभोग के पारिश्रमिक के रूप में निर्धारित किया जाता है) को देने के लिये कहे जाते हैं तब वे गाथा (बहाने के लिये गढ़ी गई कहानियाँ) कहने लगते हैं। धन-विहीन कामुक वाग्जाल से ही अपना काम निकालना चाहते हैं ॥ ४४ ॥

अकण्टका पुष्पमही वेश्यापि द्विमातृका ।
मन्त्रिहीना च राज्यश्रीर्भुज्यते विटचेटकैः ॥ ४५ ॥

कण्टकविहीन पुष्पवाटिका, माता (रक्षिणी, कुट्टिनी) विहीन तरुणी वेश्या एवं सन्मन्त्रियों से हीन राज्यलक्ष्मी विटों एवं चेटों के द्वारा भोगी जाती है ॥ ४५ ॥

अयं पीनस्तनाभोगसौभाग्यविभवोचितः ।
द्रविणोपार्जनस्यैव कालः कुवलयेक्षणे ॥ ४६ ॥

हे कमलनेत्रे ! स्थूल (मोटे एवं निबिड) स्तनों की सौभाग्यश्री के योग्य धनोपार्जन का तुम्हारा यही समय है ॥ ४६ ॥

खला इवातिचपलाः कृतालिङ्गनसंगमाः ।

न गताः पुनरायान्ति बाले यौवनवासराः ॥ ४७ ॥

हे मुग्धे ! सुखद आलिङ्गन की अनुभूति कर चुकने वाले, अत्यधिक चंचल, खलों की भाँति यौवन के दिन चले जाने पर पुनः लौट कर नहीं आया करते ॥ ४७ ॥

प्रथम . . ।

. . . . नां पुष्पवतीनां लतानां च ॥ ४८ ॥

. पुष्पवती (रजस्वला एवं प्रसूनवती) स्त्री एवं लता (यौवन के प्रारम्भ में सुखदायक एवं रम्य हुआ करती है) ॥ ४८ ॥

तस्मान्मानिनि कापि हेमकुसुमारामोचयाय त्वया

माता तावदनेककूटकुटिला काचित्समन्विष्यताम् ।

एताः सुभ्रु भवन्ति यौवनभरारम्भे विजृम्भासुवो

वेश्यानां हि नियोगिनामिव शरत्काले धनाः संपदः ॥ ४९ ॥

इसलिये हे मानिनि ! अत्यधिक धन की अभिवृद्धि के लिये अनेक प्रपञ्च एवं षड्यन्त्र में प्रवीण (प्रपञ्च एवं षड्यन्त्र में प्रवीण होना ही उसकी कुटिलता है) किसी माता (रक्षाकर्त्री) का अन्वेषण तुम्हें करना चाहिए। हे सुन्दरभ्रुकुटियाली स्त्री ! जिस प्रकार शरत्काल में कृषकों को प्रचुर सम्पत्ति का लाभ होता है, उसी प्रकार पूर्ण यौवनावस्था के समय में वेश्याओं के लिये ये मातायें पर्याप्त सम्पत्ति का कारण होती हैं ॥ ४९ ॥

अस्त्येव सा बहुतराङ्कवती तुलेव

कालस्य सर्वजनपण्यपरिग्रहेषु ।

क्षिप्रप्रवृद्धपलकल्पनया ययासौ

भागी कृतः परिमितत्वमुपैति मेरुः ॥ ५० ॥

जिसे तुम माता बनाओगी वह, सम्पूर्ण प्राणिरूप पण्य (खरीदने की वस्तु) के ग्रहण करने में विस्तीर्ण मध्यभागवाली काल की उस तुला (तराजू) की भाँति होगी (होनी चाहिये), जिस तुला (पक्षान्तर में स्त्री) के द्वारा अतिशीघ्र पलकल्पना से (एक एक पल के रूप में करने से अर्थात् ग्रहण करने से) भागीकृत (बाँटा या काटा गया) यह मेरु (पक्षा० मेरुसदृश धनी व्यक्ति) भी परिमितता को प्राप्त हो जाता है अर्थात् सामान्य बन जाता है ॥ ५० ॥

यासां रामामलयजलतागाढसंरोधलीला
निर्यन्त्राणां नियमजननी भोगिनां मन्त्रमुद्रा ।
विश्वं यस्याः फलकलनया लक्ष्यतामेति पाणौ
तस्या जन्मक्रमपरिगतं श्रूयतां वृत्तमेतत् ॥ ५१ ॥

जिसके हाँथ में यह सम्पूर्ण विश्व परिणाम से ही लक्ष्यता को प्राप्त होता है अर्थात् परिणाम को देखकर ही यह जाना जाता है कि अमुक व्यक्ति इस वृद्धा की कूटवागुरा में आ फँसा था, उसके जन्म आदि जीवन के वृत्तान्त को सुनो ॥ ५१ ॥

तद्वृत्तमात्रश्रवणेन कोऽपि संजायते बुद्धिविशेषलाभः ।
तयोपदेशे स्वयमेव दत्ते भवत्यसौ हस्तगता त्रिलोकी॥५२॥

इति श्रीव्यासदासापराख्यक्षेमेन्द्रनिर्मितायां समयमातृकायां चिन्तापरिप्रश्नो नाम प्रथमः समयः

उस वृद्धा के जीवन वृत्तान्त के श्रवणमात्र से एक विलक्षण प्रकार की बुद्धि उत्पन्न हो जाती है। और यदि वह स्वयं किसी को उपदेश दे देवा, उपदिष्ट व्यक्ति के लिये यह समग्र त्रिलोकी ही हस्तगता हो जाती है ॥ ५२ ॥

'इस प्रकार 'श्री व्यासदास', जिनका दूसरा नाम 'क्षेमेन्द्र' था,
के द्वारा निर्मित 'समयमातृका' का 'चिन्ता परिप्रश्न' नामक
प्रथम समय समाप्त हुआ' ।



द्वितीयः समयः

अथ दत्तावधानायां कलावत्यां यथाविधि ।

कथामकथयत्कङ्कः कुट्टन्याः कपटाश्रयाम् ॥ १ ॥

इसके अनन्तर 'कलावती' के उक्त कपट प्रवीणा वृद्धा के वृत्तान्त को श्रवण करने के लिये सावधान होने पर 'कङ्क' (नापित) ने कुट्टिनी की कपट एवं छलों से परिपूर्ण कथा को यथाविधान कहना प्रारम्भ किया ॥ १ ॥

सर्वभक्षां नमस्कृत्य तामेव सर्वमर्दवीम् ।

वदामि चरितं तस्याः कुक्षौ यस्या जगत्त्रयी ॥ २ ॥

जिसकी कुक्षि में सम्पूर्ण यह त्रिलोकी वर्तमान है और जो सर्वभक्षा (सब कुछ खाने वाली) है, उन शङ्कर की भैरवी शक्ति को नमस्कार करके मैं उस कुट्टिनी के चरित को कहता हूँ ॥ २ ॥

परिहासपुरे पूर्वं पान्थावसथपालिका ।

बभूव भूमिका नाम ····· ·· ·· ····· ·· ॥ ३ ॥

पूर्व काल में 'परिहासपुर' में यात्रियों के निवास के लिये निर्मित धर्मशाला की रखवाली करने वाली 'भूमिका' नाम की एक स्त्री थी ॥३॥

······ ·· ·············· ·····कन्यका ।

जाता घरट्टमालायामर्धघर्घटिकाभिधा ॥ ४ ॥

···········कुछ समय के अनन्तर उसे एक कन्या उत्पन्न हुई । उसका नाम था 'घर्घटिका' ॥ ४ ॥

सा वर्धमाना सुमुखी पौरैः पर्वसु पूजिता ।

तद्गृहेऽप्यकरोद्धीरी पूजामाञ्जनमेक्षयम् ॥ ५ ॥

सुमुखी यह 'घर्घटिका' धीरे धीरे वृद्धि को प्राप्त होने लगी । पुरवासी पर्व (पूर्णिमा, अमावास्या, संक्रान्ति आदि) के समय उसे निमन्त्रित

कर पूजापूर्वक भोजन आदि प्रदान करते थे। किन्तु 'घर्घटिका' चौर्यवृत्ति की लड़की थी। अवसर प्राप्तकर वह निमन्त्रणदाता के पूजा के बर्तन को ही लेकर चली जाती थी ॥ ५ ॥

सप्तवर्षैव सा लोभाद्वाक्प्रौढा हट्टतोरणे।
जनन्या पण्यतां नीता लोके जालवधाभिधाम् ॥ ६ ॥

जब वह लड़की अभी सात वर्ष की ही थी तभी उसने वार्तालाप में अत्यधिक निपुणता प्राप्त कर ली थी। अपनी वार्ता के द्वारा वह लोगों का मनोरञ्जन किया करती थी। उसकी इस प्रवीणता को देखकर लोभपरवश उसकी माता ने बाजार के बहिर्द्वार में खड़ी होकर उसे 'जालवधा' नामक एक अन्य स्त्री के हाथ बेच दिया ॥ ६ ॥

सुवृत्तशङ्खलतिका सकूटकुचकञ्चुका।
कामुकाराधनं चक्रे चुम्बनालिङ्गनेन सा ॥ ७ ॥

सुडौल बाँहों वाली, कम्बुग्रीवा एवं लतिका के समान प्रलोभनीय एवं पतली शरीरवाली तथा उठनेवाले स्तनों पर कञ्चुक (चोली) पहनने वाली उस बाला ने चुम्बनदान एवं कोमल आलिङ्गन के द्वारा कामुक जनों का मनोरञ्जन करने लगी ॥ ७ ॥

कुङ्कुमार्थी वणिक्सूनुरथ तेनाययौ युवा।
सुन्दरः पूर्णिको नाम पूर्णवर्णसुवर्णवान् ॥ ८ ॥

उसके उक्त व्यापार से आकृष्ट होकर, कुङ्कुम का व्यापार करने वाला सुन्दर गौर आकृतिवाला, धनवान्, पूर्णिक नाम का एक बनिया का लड़का उसके पास आया अर्थात् उसमें अत्यधिक अनुरक्त हुआ ॥ ८ ॥

समायां नेत्रवलनालोलभ्रूलास्यविभ्रमैः।
कृष्टः कौतुकवान्भेजे चपलासंगमं निशि ॥ ९ ॥

सभा में नेत्रों के घुमाने-फिराने से चञ्चल भृकुटि के नृत्य-विलासों (घुमाने में प्रतीयमान सौन्दर्यों) से आकृष्ट अतः उत्कण्ठित उस

युवक 'पूर्णिक' ने रात्रि में उस चपला युवती के साथ संगम किया ॥ ९ ॥

सा तस्य क्षैव्यसुप्तस्य निशि कण्ठावलम्बिनी ।
निर्गीर्य शनकैः सर्वं कर्णाभरणकाञ्चनम् ॥ १० ॥
अङ्गुलीभ्यः समाकृष्य हेमनालकनालिकाः ।
चौरग्रस्तेव चुक्रोश हा हतास्मीति सस्वनम् ॥ ११ ॥

रात्रि में सभाग के अनन्तर मदिरा के नशे में चूर जब कि वह युवक उस युवती को कण्ठ से लगाये सो रहा था, उस समय उसके कण्ठ में संसक्त उस युवती ने धीरे धीरे उसके (युवक के) सुवर्ण के बने हुये सम्पूर्ण कर्णाभूषणों को निकाल कर छिपा दिया और उसकी अङ्गुलियों से सुवर्ण निर्मित अंगूठियां को निकाल कर चोर से पकड़ी गई की भाँति 'हा मैं मारी गई, मैं ठग ली गई' कहकर बड़े जोरों से चिल्लाने लगी ॥ १०–११ ॥

प्रतिबुद्धोऽथ सहसा स तया मुषितो वणिक् ।
वाससाच्छादितशिरा ययौ स्वजनलज्जितः ॥ १२ ॥

इसके बाद उसके द्वारा ठग लिया गया वह वणिक् झटिति जगकर अपने लोगों से, इष्टमित्रों से, लज्जित होता हुआ अपने शिर को वस्त्र से आच्छादित कर वहाँ से चला गया ॥ १२ ॥

ततः सा यौवनवती रुचिराभरणाम्बरा ।
उवास शंकरपुरे मह्लणेति कृताभिधा ॥ १३ ॥

उसके अनन्तर यौवन के मद से मतवाली, रुचिर आभूषण एवं वस्त्रों को पहनने वाली वह युवती शङ्करपुर में रहने लगी। वहाँ उसने अपना नाम 'मह्लणा' रख लिया था ॥ १३ ॥

भूरिभाग्यभरैः सक्ता सा कामिकुसुमोच्चये ।
लेभे संभोगविश्रान्तिं न रजन्यां न वासरे ॥ १४ ॥

अत्यधिक भाग्य (सौभाग्य=सौन्दर्य, यौवन आदि) समूहों से संयुक्त, कामिजनरूपी कुसुम समूह में ससक्त, वह 'मङ्गणा' न तो दिन में और न रात्रि में ही सम्भोग से विश्राम को प्राप्त करती थी अर्थात् उसका सम्भोग व्यापार दिन-रात चलता रहता था ॥ १४ ॥

निर्गच्छतां प्रविशतां प्रतिपालयतां बहिः।
बभूव तद्गृहे संख्या न शुनामिव कामिनाम् ॥ १५ ॥

उसके घर से निकलनेवाले, घर में प्रवेश करने वाले, बाहर प्रतीक्षा करने वाले कामी लोगों की, एक कुतिया के पीछे दौडनेवाले बहुत से कुत्तों की भाँति कोई संख्या न थी ॥ १५ ॥

कूपे प्रपायामुद्याने सूदपौष्पिकवेश्मसु।
सखीगृहे च तुल्यास्तान्सा सिषेवेऽह्नि कामुकान् ॥ १६ ॥

वह युवती 'मङ्गणा' कुएँ पर, प्रपा के स्थान में, उद्यान में रसोई घर में, उद्यानशाला में, सखी के घर पर अर्थात् सर्वत्र समानरूप से विश्वसनीय कामुकों के साथ दिन में रमण किया करती थी ॥ १६ ॥

क्षपारम्भे क्षीबं शिशुकमिव निक्षिप्य शयने
जगामान्यं तस्मिन्सुरतघननिद्रापरमपि।
निशाशेषे शूलाकुलनिजसखीवेश्मगमना-
पदेशेनान्यं सा सततमगमत्स्वक्रयभरे ॥ १७ ॥

रात्रि के प्रारम्भ में अर्थात् सायकाल मदिरा से मत्त व्यक्ति को शय्या पर बालक की भांति सुलाकर दूसरे कामुक के पास चली जाती थी और वहाँ भी कामुक के सम्भोग से श्रान्त अतएव गाढी निद्रा में सो जाने पर दूसरे के साथ संगम करती थी। इस प्रकार रात्रि के अन्तिम प्रहर में पीडा से व्याकुल अपनी सखी के घर जाने के बहाने से अन्य कामुक के पास जाकर सम्भोग करती थी। अपने सौन्दर्य से खरीदे गये व्यक्तियों के मध्य यही उसका व्यापार था ॥ १७ ॥

नानाविहारकुपितैः सान्विष्टा सुभगैर्भृशम्।
पलायमाना गुप्तेषु तस्थौ कामुकवेश्मसु ॥ १८ ॥

अनेकों धूर्त व्यक्तियों के द्वारा विविध पिशुनतामरी बातों से क्रुपित कराये गये बहुत से सुभग (विवाहित अथवा सुन्दर) व्यक्तियों के द्वारा अत्यधिक खोजी जाने पर वह (मङ्कणा) भागकर कामुक व्यक्तियों के गुप्तगृहों में निवास करती थी॥ १८॥

ततः प्रासादपालेन नन्दिसोमेन सा निशि।
गौरीगर्भगृहं रात्रौ रागान्धेन प्रवेशिता ॥ १९ ॥

कुछ समय के अनन्तर एक रात्रि में वह रागान्ध (प्रेम में मन वाले) 'नन्दिसोम' नामक प्रासाद (नगराधिप के गृह) के रक्षक के द्वारा संभोगार्थ गौरी के मन्दिर के गर्भगृह (मध्यभाग) में प्रविष्ट कराई गई॥ १९॥

निःश्वासनिद्रया तस्मिन्प्रयाते काष्ठभूतताम्।
देवालंकरणं सर्वं सा गृहीत्वा ययौ जवात् ॥ २० ॥

संभोग के बाद उस प्रासादपाल के विश्वासपूर्वक प्रगाढ निद्रा में शयन के अनन्तर काष्ठ के समान निश्चेष्ट हो जाने पर वह युवती देवों के सम्पूर्ण अलंकरणों को लेकर जल्दी से वहाँ से चली गई॥ २०॥

ततः समरसिंहस्य डामरस्यावरुद्धिका।
भूत्वा नागरिकानाम प्रतापपुरवासिनः ॥ २१ ॥

इसके अनन्तर प्रतापपुर के निवासी वीरचेष्टावाले अर्थात् पराक्रमी 'समरसिंह' की प्रेयसी बन गई। वहाँ पर उसने नाम परिवर्तन करके अपना नाम 'नागरिका' रख लिया था॥ २१॥

प्रभूतपिशिताहारसंभारैः स्थूलतां गता।
सा तस्य भीमसेनस्य हिडिम्बेवाभवत्प्रिया ॥ २२ ॥

अत्यधिक मांसाहार के सेवन से स्थूलता को प्राप्त हुई वह

कामिनी, भीमसेन की हिडिम्बा की भाँति, उस समरसिंह की प्रिया बन गई ॥ २२ ॥

सर्वस्वस्वामिभावं सा संप्राप्ता तस्य रागिणः ।
प्रेरणं बन्धुयुद्धेषु विदधे निधनैषिणी ॥ २३ ॥

कामासक्त उस समरसिंह की संपूर्ण वस्तुओं पर उसी का स्वामित्व स्थापित हो गया था। समरसिंह के निधन की इच्छा से उसने उसको बन्धुओं के साथ युद्ध के लिये प्रेरित किया ॥ २३ ॥

हते पितृव्रजे तस्मिन् बद्धमूला परं गृहे ।
साभूदपरपुत्रस्य श्रीसिंहस्यावरुद्धिका ॥ २४ ॥

युद्ध मे पितृसमूह के (घर के बड़े लोगों के) विनष्ट हो जाने पर, गृह मे पूर्णरूप से अपने अधिकार एवं अपनी जड़ को जमाकर वह समरसिंह के एक दूसरे पुत्र (जो संभवतः बड़े न थे) 'श्रीसिंह' की अवरुद्धिका हो गई ॥ २४ ॥

विगलद्यौवना यूनः सा सपत्नीजिगीषया ।
चकार तस्य स्वीकारं वशीकरणमूलकैः ॥ २५ ॥

विगलित यौवनवाली वह स्त्री युवक 'श्रीसिंह' की स्त्रियों को जीतने की इच्छा से अन्य वशीकरण आदि उपायों से उसको (श्रीसिंह को) अपने वश में कर लिया ॥ २५ ॥

मत्स्ययूषघृतक्षीरपलाण्डुलशुनादिभिः ।
प्रत्यायनप्रसक्ताभूद्यौवनस्य प्रियस्य सा ॥ २६ ॥

वह स्त्री अपने युवक-प्रेमी 'श्रीसिंह' के आराधन (सेवन) में प्रसक्त रहा करती थी। वह उसे मछली का जूस (रसा), घृत, दुग्ध, प्याज एवं लशुन आदि बल एवं कामवर्धक पदार्थ खिलाती थी ॥ २६ ॥

अथ भूपभयात्तस्य प्रत्यासत्तेऽथ भूतपे (?)।
भूरि द्रविणमादाय साविशन्नगरान्तरम् ॥ २७ ॥

"श्रीसिंह के इस प्रकार से कामासक्त होने पर और प्रजा में अराजकता फैल जाने पर उनके पड़ोसी, प्रजापालक एक राजा ने उन पर आक्रमण कर दिया।" समीप में आये हुये राजा के भय से वह स्त्री 'श्रीसिंह' की विपुल-सम्पत्ति को लेकर दूसरे नगर में चली गई ॥ २७ ॥

ततस्तनुतरस्वच्छनमना विनतानना।
रण्डा मृगवती नाम साभूत्स्पर्शस्पृहामही ॥ २८ ॥

वहाँ पहुँच कर उस रण्डा ने अपना नाम 'मृगवती' रख लिया। वह अति सूक्ष्म एवं स्वच्छ वस्त्रों को धारण करती और एक कुलीना स्त्री की भाँति जन-समूह में निकलने पर अपना शिर नीचे करके चलती थी। अब उसे कुछ दान करने की इच्छा भी होने लगी ॥ २८ ॥

सदा सुरेश्वरीं गत्वा शतधारातटे चिरम्।
तिलवालुकदर्भाङ्का सा चक्रे पितृतर्पणम् ॥ २९ ॥

बहुत दिनों तक वह निरन्तर शतधारा नामक नदी के तट पर 'सुरेश्वरी' के पास जाकर तिलकुशादि तर्पण की समग्र सामग्री लेकर पितृतर्पण किया करती थी ॥ २९ ॥

तत्र बन्धुरमाराख्यमश्वारोहं महाधनम्।
तीर्थस्थिता सा जग्राह मत्स्यं बकवधूरिव ॥ ३० ॥

वहाँ तीर्थ में रहती हुई उसने 'बन्धुरमार' नामक एक महाधनी अश्वारोही को—जिस प्रकार बकवधू (बगुली) मत्स्य को पकड़ती है उसी प्रकार—पकड़ा अर्थात् अपने प्रेम-जाल में फँसाकर आबद्ध किया ॥ ३० ॥

गृहं मुग्धया गृहीत्वेव चित्तग्रहणकोविदा।
सर्वाण्यप्यपकार्येषु सैव तस्याभवद्विभुः ॥ ३१ ॥

पुरुषों के चित्त को वश में करने की कला में पण्डित 'मृगवती' ने इस अश्वारोही के घर को अपनी मुट्ठी में अर्थात् अपने अधिकार में कर लिया। उसके सम्पूर्ण आय व्यय आदि कार्यों का सञ्चालन 'मृगवती' ही करती थी॥ ३१॥

मासेन सा गते तस्मिन्पञ्चतां बहुसंचये।
तस्थौ पादाववष्टभ्य तस्यानुगमनोद्यता॥ ३२॥

अत्यधिक धन सचय करनेवाले उस अश्वारोही के एक महीने में मर जाने पर उसके अनुगमन के लिये उद्यत अर्थात् सती होने के लिये तत्पर 'मृगवती' मृतक के पैर को पकड कर स्थित हो गई॥ ३२॥

टिप्पणी—यहाँ यह ध्यान देना है कि 'मृगवती' का सतीत्व के लिये उद्यत होना एक नाटकमात्र था। इसमें स्वल्प भी वास्तविकता न थी।

तद्बान्धवैर्वार्यमाणा मिथ्यैवारब्धदुर्ग्रहा।
धैर्यावष्टम्भगम्भीरमुवाचार्याङ्गनेव सा॥ ३३॥

उस अश्वारोही के जाति परिवार के लोगों के द्वारा सती होने से रोकी जाने पर, सती होने के लिये मिथ्या एव दिखावटी आग्रह करनेवाली मृगवती ने कुलवधू की भाँति धैर्य धारण करके गम्भीर सी वाणी बोली॥ ३३॥

कुले महति वैधव्यं वैधव्ये शीलविप्लवः।
शीलभ्रंशे वियोगोऽयं वह्निना मम यास्यति॥ ३४॥

किसी महान् कुल में किसी स्त्री का वैधव्य धारण करना महान् अमगल एव अनर्थ का द्योतक ही है; क्योंकि वैधव्य की अवस्था में शीलभङ्ग (पातिव्रत्य विनाश) की आशका बनी रहती है। अतः शीलभग में हेतुभूत यह मेरा पति वियोग वह्नि के साथ ही जायगा अर्थात् मैं भी जल मरूँगी॥ ३४॥

इत्युक्त्वा तीव्रसंकल्पनिश्चलाश्ममयीव सा।
तद्वित्तापहृतदर्पेण मन्त्रव्यक्तिमिवावदत्॥ ३५॥

ऐसा कहकर, आग में जलने के लिये तीव्र संकल्प के कारण निश्चल प्रस्तरमयी सी होकर वह उस मृतक की सम्पत्ति की उपलब्धि की प्रसन्नता से सत्त्वव्यक्ति (आनन्द एवं पुलकोद्भव आदि) को धारण सा किया ॥ ३५ ॥

टिप्पणी—पतिवियोग के अनन्तर आग में जलने के लिये उद्यत स्त्री शोकाकुल न होकर रोमाञ्चित, आनन्दित आदि होती है। उसके रोमाञ्च आदि सत्त्वव्यक्ति के नाम से कहे जाते हैं।

ततस्तद्द्रविणस्वाम्यं राजादेशादवाप्य सा ।
प्रार्थिता राजपुरुषैस्तस्थौ लीलावलम्बिनी ॥ ३६ ॥

मृतक की विधवा 'मृगवती' राजा के आदेश से मृतक की सम्पत्ति के स्वामित्व को प्राप्त कर अर्थात् उसकी उत्तराधिकारिणी होकर राजपुरुषों से प्रार्थित होकर अर्थात् राजा के अधिकारियों के द्वारा आग में जल मरने से रोकी जाकर विविध लीलाओं को करती हुई वहाँ रहने लगी ॥ ३६ ॥

अथाश्वशालादिविरं स्वीकृत्य रतिवाडवम् ।
सा चक्रे जीवलोकस्य स्वनामपरिवर्तनम् ॥ ३७ ॥

इसके अनन्तर अश्वशालाध्यक्ष को अङ्गीकार करके उसने अश्वजाति के समान रमण-व्यापार किया अर्थात् उसकी काम बुभुक्षा एवं काम व्यापार पशुवत् थे, अश्वजाति के समान सर्वदा प्रचलित रहते थे। इस प्रकार प्राणिलोक के लिये उसने अपने नाम (मृगवती) का ही परिवर्तन कर डाला ॥ ३७ ॥

टिप्पणी—ऐसी प्रसिद्धि है कि मृग आदि पशु वर्ष में एक बार ही संभोग किया करते हैं। अहर्निश इसी कार्य में लिप्त रहना उनकी प्रकृति के विपरीत है। अश्वों की कामबुभुक्षा सर्वदा जाग्रत रहती है। इस प्रकार काम व्यापार में उसने अश्वों की सरणि का अनुकरण कर अपने नाम को विपरीत सिद्ध किया।

तद्धामसेवया नित्यं सा तस्य स्नानकोष्ठके ।
विलासस्खलितालापैर्दिविरस्याहरन्मनः ॥ ३८ ॥

मृगवती ने उस दिविर (अश्वशालाध्यक्ष) के स्नानघर में नित्य ही उससे मिल कर सेवा एवं विलास से पूर्ण वार्तालाप से उनके मन का हरण कर लिया अर्थात् उस दिविर को अपने वश में कर लिया ॥ ३८ ॥

कृत्वा लुण्ठिं दिनममखिलं भूरिभूर्जप्रयोगै-
र्भुक्त्वा पीत्वा निशि बहुतरं कुम्भकर्णायमानः ।
प्रातः स्नानव्यतिकरकलादम्भसंभावनाभू-
र्मद्यं दाहं नयति दिविरः शान्तिमन्तर्जलेन ॥ ३९ ॥

वह दिविर (अश्वशालाध्यक्ष) अपने वर्णसङ्करबहुल मित्रों के साथ सुन्दर भोजन करके एवं मदिरा का पान करके सम्पूर्ण दिन शय्या पर इधर से उधर लोटा करता था और रात्रि में कुम्भकर्ण की भाँति अचेत होकर प्रगाढ निद्रा में सोता था। प्रातःकाल, स्नान करने की कला में प्रवीणता का दम्भ भरने वाला वह दिविर अपनी मदिरा सम्बन्धी समग्र शारीरिक जलन को जल के मध्य में स्थित होकर दूर करता था ॥ ३९ ॥

टिप्पणी—यद्यपि मदिरा की जलन से व्यग्र होकर ही दिविर प्रातःकाल बहुत समय तक जल में रहता था, किन्तु पान की अधिकता एवं शारीरिक कमजोरी व्यक्त न हो जाय एतदर्थ वह अधिक समय तक जल में रहकर अपनी स्नान की विविध कलाओं की प्रवणता का प्रदर्शन करने का स्वांग रचता था।

प्रवृद्धापरपुत्राथ दिविराराधनव्रता ।
निखिलं जीवलोकं मा विक्रीय धनमाददे ॥ ४० ॥

मृगवती के कई सौतेले पुत्र थे। वह पूर्णवयस्क हो चुकी थी। दिन रात दिविर की शुश्रूषा एवं आराधना ही उसका कर्त्तव्य था। इस प्रकार शुश्रूषा से दिविर को वश में करके उसने उसके सम्पूर्ण अश्व आदि जानवरों को बेचकर सब धन अपने अधिकार में कर लिया ॥ ४० ॥

सा वेश्मविक्रयादाने पुत्रैराकृष्य वारिते ।
गत्वाधिकरणं चक्रे मठिभट्टोपसेवनम् ॥ ४१ ॥

सम्पूर्ण जानवरों को बेचने के अनन्तर उसने घर भी बेचकर द्रव्य अपने अधिकार में करना चाहा, किन्तु जब उसके इस कार्य में उसके सौतेले पुत्रों ने बलपूर्वक प्रतिरोध उत्पन्न किया तब उसने न्यायालय में जाकर न्यायाधीशों, जिन्हें उस समय मठिभट्ट कहा जाता था, का आश्रयण किया ॥ ४१ ॥

उत्कोचारब्धसंघट्टैर्भट्टैः कूटरथादिभिः ।
सादिष्टामीष्टसंपत्तिर्जग्राह जयपट्टकम् ॥ ४२ ॥

अपने इस मुकदमे के प्रसग में मृगवती ने न्यायाधीशों को पर्याप्त घूस दिया। उत्कोच (घूस) लेने के कारण परस्पर संघटित हुये, छल-कपट के आकर उन भट्टों (न्यायाधीशों) ने, सम्पत्ति की लोभी उस स्त्री को गृहरूपी सम्पत्ति पर उसके अधिकार का आदेश दे दिया। इस प्रकार उसने विजयपत्र को ग्रहण किया ॥ ४२ ॥

गृहं विक्रीय सर्वस्वं गृहीत्वा पुत्रशङ्किनी ।
सा चित्रवेषप्रच्छन्ना ययौ शाक्तमठाश्रयम् ॥ ४३ ॥

घर को बेंच कर तथा सम्पूर्ण सम्पत्ति को लेकर, सौतेले पुत्रों के भय के कारण, वह विचित्रवेष में छिपकर अर्थात् एक अपरिचित के वेष को धारण कर शाक्तमठ में चली गई ॥ ४३ ॥

कृष्णीकृतश्वेतकचा रङ्गाभ्यङ्गेन भूयसा ।
······जेव सा तत्र नवपण्याङ्गनाभवत् ॥ ४४ ॥

वहाँ पर उसने अत्यधिक रङ्ग (खिजाब) लगाकर अपने शिर के बालों को पूर्णतया कृष्णवर्ण का बना डाला था। अपने इस बनावट के कारण वह वहाँ युवती वेश्या की भाँति प्रतीत होती थी ॥ ४४ ॥

चलित्वाभ्यागता··········वणिग्वधूः ।
इति तस्याः प्रवादेन बभूवाधिकविक्रयः ॥ ४५ ॥

वहाँ के लोगों मे यह बात अतिशीघ्र फैल गई कि 'बाहर से एक सुन्दरी एवं साध्वी वणिक् स्त्री आई है।' इस प्रकार के प्रवाद के कारण उसकी अधिक बिक्री हुआ करती थी ॥ ४५ ॥

टिप्पणी—वहाँ पहुँच कर मृगवती ने अपने को वणिग्वधू बतलाकर अपनी एक दुकान कायम कर ली थी।

सत्यासत्यकथातत्त्वमविचार्यैव धावति ।
गतानुगतिकत्वेन प्रवादप्रणयी जनः ॥ ४६ ॥

संसार के व्यक्तियों की यह अवस्था है कि 'भेंड़ियाधसान' की भाँति वे, फैलनेवाली झूठी खबरों मे बहुत शीघ्र विश्वास कर लेते हैं। इस प्रकार वे सत्य एवं असत्य कथाओं के तत्त्व को बिना विचारे ही किसी बात की ओर दौड़ने लगते हैं ॥ ४६ ॥

क्षीणजिह्वाधरकरा कोपपानेन कामिनाम् ।
छिन्नाङ्गुलिः सा जग्राह रागवेलां पुनः पुनः ॥ ४७ ॥

कामी लोगों के समूह में कोपपान (मदिरापान) के कारण अर्थात् मत्तता की अवस्था में उन्मत्त कामुक व्यवहार के कारण उसको जिह्वा, उसका अधर एवं कोमल कर, दन्तक्षत तथा नखक्षत के कारण, परिव्याप्त हो जाते थे। इस प्रकार छिन्नाङ्गुलि वाली वह स्त्री बारम्बार रागवेला (अनुराग अथवा रक्तिमा) को धारण करती थी ॥ ४७ ॥

सा चौरद्रविणादानाद्गृहीता शठचेटकैः ।
प्रत्यक्षापह्नववती सुबद्धा बन्धने धृता ॥ ४८ ॥

वह चोरी किये गये धन को ग्रहण करती थी। इसी प्रकार के कार्य में वह एकबार दुष्ट-नौकरों अथवा दुष्ट व्यभिचारियों के द्वारा पकड़ी गई। पकड़ी जाने पर जब उसने अपने कृत्य को स्वीकृत न करके छिपाने की चेष्टा की तब बन्धन (हथकड़ी) में बाँधकर बन्धनागार (कारागार) में डाल दी गई ॥ ४८ ॥

तत्र बन्धनपालेन भुजंगाख्येन संगता ।
निर्विकल्पमुखा चक्रे मत्स्यापूपमधुक्षयम् ॥ ४९ ॥

वहाँ भी उसका व्यभिचारकर्म जारी रहा। वह कारागार के रक्षक 'भुजङ्ग' के साथ व्यभिचार में आसक्त होकर पूर्ण आनन्द का मजा लेती हुई मत्स्य, अपूप (पुआ) एवं मधु (मदिरा एवं शहद) का खूब उपभोग करती थी ॥ ४६ ॥

साथ बन्धनपालस्य गाढालिङ्गनसंगमे ।
क्षीबस्य चुम्बनासक्ता जिह्वां चिच्छेद मुक्तये ॥ ५० ॥

एक समय, जब कि गाढालिङ्गन की प्रक्रिया प्रचलित थी, चुम्बन में आसक्त वह स्त्री अपनी मुक्ति के लिये मदिरा के नशे में मत्त कारागार के रक्षक की जिह्वा को काट डाला ॥ ५० ॥

सा जिह्वाछेदनिःसंज्ञं तमाक्रन्दविवर्जितम् ।
स्त्रीवेषं स्वांशुकैः कृत्वा जगामोत्क्षिप्तश्रृङ्खला ॥ ५१ ॥

जिह्वा के कट जाने से बेहोश अतः आक्रन्दन से रहित उस रक्षक को देखकर उस स्त्री ने बेणी को फेंककर तथा अपने वस्त्रों से, अच्छी प्रकार से, घूँघट आदि बनाकर वहाँ से निकल भागी ॥ ५१ ॥

सा भग्ननिगडा प्राप्य रजन्यां विजयेश्वरम् ।
महामात्यसुतास्मीति जगादानुपमाभिधाम् ॥ ५२ ॥

वेणी-रहित वह स्त्री रात्रि में ही विजयेश्वर के पास पहुँची। वहाँ उसने कहा कि मैं महामन्त्री की पुत्री हूँ। मेरा नाम 'अनुपमा' है ॥ ५२ ॥

सा तत्र भोगमित्रस्य प्रीत्या रत्नैरवाकिरत् ।
पुराणचित्ररूपस्य यौवनस्यात्पशेषताम् ॥ ५३ ॥

वह वहाँ पर भोग (सुरति) के मित्र प्राचीन अर्थात् अतिप्रौढ तथा प्रसाधनों के द्वारा विचित्र रूप से सज्जित रूप से समन्वित

यौवन की स्वल्पावशिष्ट अवधि को प्रसन्नतापूर्वक रत्नों से परिव्याप्त कर दिया अर्थात् वहाँ वहाँ पर रत्नों को धारण करके अपने सौन्दर्य को वृद्धिङ्गत करती थी ॥ ५३ ॥

यत्नोत्क्षिप्तकुचा कचाग्रततया करे
बद्धापाटलपट्टकेन सरलस्थूलाञ्जनव्यञ्जना ।
नासार्धावधि वाससा च वदनं संछाद्य विद्याधरी
केयं नूतननिर्गतेति विदधे सा मुग्धसंमोहनम् ॥ ५४ ॥

प्रयत्नपूर्वक स्रस्तस्तनों को ऊपर उठाकर अर्थात् युवतियों के स्तनों की भाँति उन्नत, सीधा एवं कठोर बनाकर, शिर के बालों की पर्याप्त लम्बाई के कारण एवं हाथ मे बाँधे हुये रक्तवर्ण के पट्टक से द्विगुणित शोभावाली आँखों में सीधे अर्थात् कान की ओर बढ़ने वाले एवं स्थूल अञ्जन लगाये हुये वह स्त्री जब वस्त्र से अपने आधी नासिका पर्यन्त मुख को ढक कर निकलती थी तब "यह कौन सी नवीन विद्याधरी निकली है ?" इस प्रकार कहने वाले भोले भाले व्यक्तियों को सम्मोहित कर लेती थी ॥ ५४ ॥

तामेकवारं दृष्ट्वैव नग्नां प्रथमकौतुकात् ।
यथापि तेन वैरस्यान्न कश्चित्पुनरराययौ ॥ ५५ ॥

यद्यपि बाह्य कृत्रिम प्रसाधनजन्य उसके सौन्दर्य को देखकर प्रथम बार उत्पन्न उत्कण्ठा के कारण लोग उसके पास जाते थे और यदि उसे एक बार भी नग्न (यथार्थ रूप में) देख लेते थे तो उन्हें उसमें इतनी विरसता मालूम होती थी कि वे पुनः दूसरी बार उसके पास नहीं जाते थे ॥ ५५ ॥

टिप्पणी—गलितयौवना स्त्री के सिकुड़े हुये चाम वाले शरीर को देखकर भला किस व्यक्ति को उसके साथ संभोग में आनन्द हो सकेगा ? यही लोगों के वैरस्य का कारण होता था ।

शीतशालेव शिशिरे दीपमालेव वासरे ।
जीर्णा निर्माल्यमालेव वेश्या कस्योपयुज्यते ॥ ५६ ॥

जाड़े की ऋतु में शीतल घर, दिन में दीपमाला एवं जीर्ण, निर्माल्य माला की भाँति गलितयौवना वेश्या भला किस व्यक्ति के द्वारा भोगी जा सकती है ? अर्थात् कोई भी व्यक्ति वृद्धा वेश्या के सम्भोग की ओर आकृष्ट नहीं होता ॥ ५६ ॥

सा तत्र ग्राहकाभावान्मृग्यन्ती पथिकांश्चलान् ।
संध्यायामञ्चलार्कर्षैः स्वल्पभाटीमयाचत ॥ ५७ ॥

वह वहाँ पर ग्राहक कामुकों के अभाव में कुछ चंचल अर्थात् कामुक चित्तवाले पथिकों को खोजती हुई सन्ध्या के समय अपना अञ्चल फैला फैला कर आजीविकारूप भिक्षा माँगा करती थी ॥ ५७ ॥

तपस्विनी शिखाख्या सा सङ्गं चक्रे तपस्विना ।
तत्र भैरवसोमेन भिक्षाभक्तार्धदायिना ॥ ५८ ॥

जीविका के अन्य साधन को न देखकर वह तपस्विनी हो गई और उसने अपना नाम 'शिखा' रख लिया। उस अवस्था में 'शिखा' ने "भैरवसोम" नामक तपस्वी का साथ पकड़ा। 'भैरवसोम' अपनी भिक्षा के भोजन में से आधा उस 'शिखा' को दिया करता था ॥ ५८ ॥

भस्मस्मेरशरीरसंचितरुचिर्दत्ताक्षिजीवाञ्जना
बिभ्राणा स्फटिकाक्षसूत्रममलं वैचित्र्यमित्रं गले ।
निःसंकोचनिलीनकञ्चुकरुचत्सुस्तब्धबाहुस्तनी
साभूत्क्षोभविधायिनी हतधियां भिक्षाक्षणे निर्गता ॥५९॥

भस्म लेपन से शरीर के सौन्दर्य का सचय करनेवाली, आँखों में जीवा (वचा) के अञ्जन को लगानेवाली, कण्ठप्रदेशमें वैचित्र्ययुक्त, निर्मल, स्फटिक की माला पहनने वाली, शरीर में अतिमात्र चिपके

हुए अर्थात् बिना संकोच के कसकर पहने गये कञ्चुक (कुर्ती, ब्लाउज) से कसे अत एव सुगठित किये गये बाहु और स्तन वाली, वह स्त्री जब भिक्षा के लिये निकलती थी तब निर्बुद्धि लोगों के मन में विक्षोभ उत्पन्न कर देती थी अर्थात् उसे देखकर बहुत से निर्बुद्धि व्यक्ति कामातुर हो उठते थे ॥ ५६ ॥

जाते तत्राथ दुर्भिक्षे भिक्षाभक्तेऽतिदुर्लभे ।

सा रात्रौ देवमात्रादि ययौ हृत्वा तपस्विनः ॥ ६० ॥

जब उसके जीवन का क्रिया कलाप इस प्रकार चल रहा था तभी वहाँ दुर्भिक्ष पड़ा। ऐसी अवस्था में भिक्षा-भोजन का मिलना भी कठिन हो गया। परिस्थिति की इस विकटता में एक रात को वह 'शिवा' उस तपस्वी के देवाभूषण आदि को लेकर वहाँ से चली गई ॥ ६० ॥

सा कृत्याश्रमकं गत्वा विहारं हारितस्थितिः ।

भिक्षुकी वज्रघण्टाख्या बभूव ध्याननिश्चला ॥ ६१ ॥

परिस्थिति की मारी वह भिक्षुकी 'कृत्याश्रमक' नामक विहार में जाकर, ध्यान-तत्पर होकर, रहने लगी। वहाँ उसने अपना नाम 'वज्रघण्टा' रख लिया था ॥ ६१ ॥

पात्रं तत्र गुणोचितं करतले कृत्वाऽथ भिक्षास्पदं

जीर्णं कामुककूटरागसदृशं काषायमादाय सा ।

चक्रे मुण्डनमण्डनं परिणमत्कूष्माण्डखण्डोपमं

पिण्डाप्त्यै विटटक्कनापरिचयश्रेणीविहारं शिरः ॥ ६२ ॥

वहाँ पर उसने संन्यासिनियों के योग्य, भिक्षालायक पात्र को हाथ में लेकर, कामुकव्यक्तियों के कुटिल राग के सदृश अथवा कामुक व्यक्तियों के राग के सदृश, जीर्ण गेरुआ वस्त्र को लेकर, पिण्ड (कवल, ग्रास) की प्राप्ति के लिये, कामुक व्यक्तियों के टोकने के आश्रयस्थल (कामुक व्यक्ति संभोगोद्दीपन के लिये हास-परिहास के

जन्य प्रेमपूर्वक वेश्याओं के शिर में हाथ से ठोंका करते हैं), शिर को मुण्डित करा दिया। मुण्डित किया हुआ उसका शिर ऐसा लगता था जैसे पके हुवे कूष्माण्ड (कोंहड़े) का खण्ड हो॥ ६२॥

पट्वी मण्डलशिक्षायै प्रणतानां सदैव सा।
गृहे गृहे कुलस्त्रीणां ददौ दौःशील्यदेशनाम्॥ ६३॥

प्रणत अर्थात् श्रद्धालु व्यक्तियों को दिव्य शिक्षा देने में प्रवीण वह स्त्री सर्वदा घर घर में घूमकर कुलस्त्रियों को दुःशीलता की शिक्षा दिया करती थी॥ ६३॥

वश्यप्रयोगैर्वेश्यानां वणिजामृद्धिवर्धनैः।
मन्त्रवादेन मूर्खाणां सा परं पूज्यतां ययौ॥ ६४॥

व्यक्ति को अपने वश में करने के उपायों को बतला कर वेश्याओं की, सम्पत्ति बढ़ाने के उपायों को बतला कर व्यापारियों की एवं मन्त्रों के द्वारा कार्य सिद्धि की बात कहकर मूर्खों की परं पूज्यता को वह प्राप्त हुई॥ ६४॥

तत्रोपासकदासेन मङ्गलाख्येन संगता।
सा गर्भं दम्भभोगानां मूर्तं विघ्नमिवादधे॥ ६५॥

वहाँ पर उस स्त्री ने मठ के पुजारियों की सेवा करने वाले मङ्गल-नामक व्यक्ति के साथ संसर्ग के परिणाम-स्वरूप गर्भ को धारण किया। उसका यह गर्भ उसके आडम्बरपूर्ण भोगों का मूर्तिमान विघ्न था॥ ६५॥

निच्छिन्ने पिण्डपाते सा लम्बमानमहोदरी।
प्रसूता धर्ममुत्सृज्य जगाम नगरं पुनः॥ ६६॥

इस प्रकार जीविका के साधनभूत, आडम्बर से प्राप्त, भोजन की प्राप्ति के समाप्त हो जाने पर, गर्भ के कारण लम्बमान उदर वाली वह स्त्री बच्चा पैदा करने के अनन्तर अपने स्वीकृत सन्यासिनी धर्म को छोड़ कर पुनः नगर में प्रविष्ट हुई॥ ६६॥

कूटकेशवती तत्र चित्रसेनस्य मन्त्रिणः ।
पुत्रजन्मनि सा पुण्यैः पत्न्या धात्री प्रवेशिता ॥ ६७ ॥

कृत्रिम केश को धारण करने वाली वह स्त्री, वहाँ नगर में, चित्रसेन नामक राजा के मन्त्री के घर मे पुत्र पैदा होने पर उनकी स्त्री के द्वारा, सौभाग्यवश धात्री (धाइ) के रूप मे अपने घर में रख ली गई ॥ ६७ ॥

सार्धक्षीराभिधा धात्री सिंहपादत्रसीस्थिता ।
नालोत्सङ्गा गृहं सर्वं ग्रासीकर्तुमिवैक्षत ॥ ६८ ॥

यहाँ पर उस धात्री का नाम 'अर्द्धक्षीरा' रक्खा गया, क्योंकि वह आधा दूध अपने बच्चे को पिलाती थी और आधा मन्त्री के शिशु को। मन्त्री के बालक को गोद में लेकर दिन भर बहलाने वाली वह धात्री उस सम्पूर्ण गृह को ही ग्रास कर जाना चाहती थी अर्थात् उसकी इच्छा उस सम्पूर्ण घर का अपने अधिकार में कर लेने की थी ॥ ६८ ॥

क्षीरसंक्षयरक्षार्थं संप्राप्तसरसाशना ।
सा मन्त्रिभवने धात्रा धात्री पात्रीकृता श्रियः ॥ ६९ ॥

दूध मे कमी न हो जाय एतदर्थ उस धात्री को खूब सरस (विटामिन पूर्ण) भोजन दिया जाता था। इस प्रकार मन्त्री के घर में रहने वाली वह धात्री विधाता के द्वारा शोभा और सम्पत्ति का भाजन बना दी गई ॥ ६९ ॥

कण्ठे विद्रुममालिका श्रवणयोस्ताडीयुगं राजतं
स्थूलस्थूलनिमक्तिमक्तानटकप्राग्भारभाजौ भुजौ ।
गुल्फास्फालविलम्बिकम्बलघनारम्भा नितम्बस्थली
धात्र्याः संभृतभोजनैरभिनवीभूतं पुराणं वपुः ॥ ७० ॥

सरस, उत्तम, पर्याप्त भोजन के द्वारा उस धात्री का पुराना ढीला ढाला शरीर नवीन सा हो गया। उसके कण्ठ में विद्रुममाला एवं

श्रवणों में रत्ननिर्मित दो कर्णाभूषण शोभा पाते थे। उसकी मोटी-मोटी भुजाएँ ऊपर की ओर विविक्तरूप से प्रतीयमान, सशक्त मांस-पिण्डों से अपने ऊर्ध्व गुम्फों को व्यातित करती थीं। उसकी नितम्ब स्थली मोटी अत एव घनी थी। उनके चलने के समय गुल्फ (टखनी) के उछालने से हिलनेवाले केशपाश उसके नितम्ब के आकर्षण को वृद्धिङ्गत करते थे॥ ७० ॥

ततस्तदपचारेण शिशौ जातज्वरे व्यधात्।
वैद्यदत्तोपवासा सा मत्स्यमूपपरिक्षयम्॥ ७१ ॥

कुछ समय के अनन्तर उस धात्री के खान पान एवं आचरण-सम्बन्धी गड़बड़ी के कारण, स्तन्य की विकृति से, बालक (मन्त्री का लड़का) बीमार पड़ गया। अत वैद्य ने उसे उपवास करने की आज्ञा दी। अपने इन उपवास के दिनों में वह धात्री केवल मछली का सूप (रस) ही लेती थी॥ ७१ ॥

पानीयं विनिवारणीयमहितं भक्तस्य वृत्तिर्न का
द्वित्राण्येव दिनानि धात्रिदयया धात्रीरसः पीयताम्।
जीवत्वेष शिशुर्भजस्व विविधैरम्योत्सवैः संपदं
वैद्यनेति निवेद्यमानमकरोत्सा सर्वमेवाश्रुतम्॥ ७२ ॥

वैद्य ने उस धात्री से इस प्रकार कहा —'पानीय (मदिरा अथवा जल) अहितकर है अत उसका परित्याग कर देना चाहिये अथवा अहितकर पानीय नहीं पीना चाहिये, भात (पका चावल) भी अहित कर होगा अत वह भी अग्राह्य है। बालक पर स्वभावत वर्तमान धात्री (धाइ) की दया के कारण दो-तीन दिन तक धात्री (आमला) का रस पीओ। इस प्रकार जब यह बालक स्वस्थ हो जाय तब तुम विविध उत्सवपूर्वक इसकी सम्पत्ति का सेवन करो।" वैद्य के इस तरह के आदेश को सुन कर उस धात्री ने इन सभी बातों का, जिनको उसने कभी नहीं सुना था, पालन किया॥ ७२ ॥

दृष्ट्वा तत्रातुरं बालं तृणवत्सुतरागिणी ।
सा ययौ निर्दया रात्रौ गृहीत्वा हेमसूतिकाम् ॥ ७३ ॥

वस्तुत इस धात्री का बालक पर स्नेह तृणवत् था। अत बालक को मरणासन्न देखकर निर्दय वह स्त्री रात्रि मे शिशु के सुवर्ण निर्मित आभूषण आदि को लेकर अन्यत्र चली गई ॥ ७३ ॥

ततः प्रत्यन्तविषये प्रभूतच्छागगोचरा ।
ख्याता धनवती नाम स्फीता चक्रे गृहस्थितिम् ॥ ७४ ॥

वहाँ से भागने के अनन्तर वह स्त्री पर्वत के समीप बसे गाँव में जाकर रहने लगी और अपने पास बहुत से बकरे बकरियों को रख लिया। वहाँ के लोगों मे वह धनवती के रूप मे प्रसिद्ध थी। वहाँ रह कर उसने गृहस्थी को पर्याप्त समृद्ध कर लिया था ॥ ७४ ॥

साथ मेघापघातेन तस्मिन्पशुधने वने ।
स्वकाय इव सापाये याते चर्मावशेषताम् ॥ ७५ ॥
गृहीत्वा पशुपालस्य स्थूलं निक्षेपकम्बलम् ।
गत्वावन्तिपुरं चक्रे ताराख्यापूपविक्रयम् ॥ ७६ ॥

कुछ समय के अनन्तर अत्यधिक प्रबल वृष्टि होने के कारण अपने शरीर की भाँति सम्पूर्ण पशुधन के जगल मे अथवा जल मे विनष्ट हो जाने पर, चमड़े (चर्म) मात्र के हाथ लगने पर, वह स्त्री पशुपाल (पशुओं के रक्षक चरवाहे) के द्वारा अपने पास धरोहर रूप में रक्खे बहुत से कम्बलों को लेकर वहाँ से अवन्तिपुरी को चली गई जहाँपर उसने अपूप (पूआ) बेंचने का कार्य प्रारम्भ किया ॥ ७५-७६ ॥

क्रीत्वा गणेशनैवेद्यमण्डकानां करण्डकम् ।
पुनः पाकोष्मणा नित्यमकरोद्विक्रयं पथि ॥ ७७ ॥

गणेश को नैवेद्य के रूप में समर्पित अण्डों की टोकरियों को खरीद

कर और उन्हें अग्नि से सिद्ध कर अर्थात् पका कर वह पुनः उन्हें मार्ग में बेंचा करती थी। यही उसका दैनन्दिन कार्य था॥ ७७॥

टिप्पणी—यहाँ पर अण्डों से, अण्डाकृति मोदकपिण्ड का अर्थ समझना चाहिये। इन्हीं मोदक पिण्डों को खरीद कर और उन्हें पुनः ताता कर वह बेंचा करती थी।

माभुङ्क्त गृहनारीणां प्रभूतोज्झामतण्डुलम्।
प्रभूतलाभलुब्धानां मूलस्यापि परिक्षयः॥ ७८॥

अत्यधिक लाभ के लोभी व्यक्तियों के मूलधन का भी परिक्षय हो जाता है। जब उस स्त्री का वह व्यापार न चल सका और पास की सम्पत्ति भी समाप्त हो गई तब वह गृहनारियों के द्वारा फेंके गये तण्डुलों को अर्थात् भोजन को ही खाती थी॥ ७८॥

पान्थकन्यां घृताभ्यक्तां कृत्वा कुशलिकाभिधा।
मिथ्यासन्नविवाहार्थमयाचत गृहे गृहे॥ ७९॥

उसने अब अपना नाम कुशलिका रख लिया था। कुशलिका मार्ग में भिक्षा माँगनेवाली एक लड़की के शरीर में घृत पोतकर घरों में घूम-घूम कर यह कह कर धन माँगती थी कि 'मुझे इस कन्या का विवाह अति शीघ्र करना है, अतः इसके लिये आप सहायता करें'॥ ७९॥

ततः सा पञ्जिका नाम धूतशालापुरःस्थिता।
कपटाक्षशलाकानामकरोद् गूढविक्रयम्॥ ८०॥

इसके अनन्तर उस स्त्री ने अपना नाम 'पञ्जिका' रख कर, द्यूतशाला के सामने स्थित होकर गुप्तरूप से कपटाक्षशलाका का विक्रय किया करती थी॥ ८०॥

टिप्पणी—कपटाक्षशलाका, जुआ (द्यूत) खेलने का वह पासा है जिसके खेलने में एक विशेष प्रकार की चालाकी अपेक्षित होती है और ऐसा करने से दूसरा जुआरी अवश्य ही पराजित हो जाता है।

सा पौष्पिकी मुकुलिका कृत्वा निर्माल्यविक्रयम्।
देवप्रासादपालानां मूल्यं भुक्त्वा ययौ निशि ॥ ८१ ॥

इसके अनन्तर अपने को 'मुकुलिका' नाम की मालिन बतलाने वाली अथवा अपने आपको पाटलिपुत्र से आई हुई 'मुकुलिका' बतलाने वाली वह स्त्री देवताओं के निर्माल्य को बेंच कर अपनी जीविका चलाती थी। कुछ समय बीत जाने पर देव मन्दिरों के रक्षकों का ऋण खाकर रात्रि में वह वहाँ से अन्यत्र चली गई ॥ ८१ ॥

ग्रामयात्रासु सा बारिमत्त्रदात्री हिमाभिधा।
रङ्गप्रेक्षणबालानां निनाय वलयादिकम् ॥ ८२ ॥

अपनी ग्राम यात्रा के प्रसङ्ग में उसने अपने आपको पौंसला (प्याऊ) चलाने वाली 'हिमा' बतलाया। 'हिमा' नाटक आदि देखने में तल्लीन बच्चों के वलय आदि का चुरा लाया करती थी ॥ ८२ ॥

सा नक्षत्रपरावृत्तिं कृत्वा षट्काष्टकेष्वपि।
विवाहेष्वकरोद्यत्नं वर्णाख्या कूटवर्णनैः ॥ ८३ ॥

कुछ समय के अनन्तर उसने अपना नाम 'वर्णा' रक्खा। 'वर्णा' षट्चक्र एवं अष्टचक्र में नक्षत्रों का विन्यास एवं परिवर्तन करके आडम्बरपूर्ण असत्य वर्णनों के द्वारा लडकों एवं लड़कियों के विवाह का योग बैठाने का कार्य करती थी ॥ ८३ ॥

गणविज्ञानिका मुग्धप्रत्ययैः ख्यातिमाययौ।
नामाभिज्ञानमात्रज्ञा न तु चौरान्विवेद सा ॥ ८४ ॥

भोली भाली जनता का विश्वास था कि यह 'वर्णा' ज्योतिष का बहुत अच्छा ज्ञान रखती है। उनके इसी विश्वास के कारण उसे बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त हुई यह एकमात्र नाम को पहचानने वाली थी अर्थात् चोरों का नाम निकालने वाली थी, किन्तु चोरों की सही पहचान वह नहीं कर सकती थी ॥ ८४ ॥

भावसिद्ध्यभिधाना सा देवतावेशधारिणी ।
उपहारान्प्रयच्छेति वदन्ती नावदत्परम् ॥ ८५ ॥

पुनः उसने देवता के वेश को धारण कर अपना नाम 'भावसिद्धि' रक्खा । 'भावसिद्धि' लोगों से यही कहा करती थी कि 'उपहार समर्पित-करो' इसके अतिरिक्त वह और कुछ भी न बोलती थी ॥ ८५ ॥

तत उन्मत्तिका भूत्वा सा नग्नालिङ्गिता श्वभिः ।
कुम्भादेवीति विख्याता प्राप पूजापरम्पराम् ॥ ८६ ॥

इसके बाद वह उन्मत्त स्त्री नग्न होकर रहती तथा कुत्तों की वृत्ति अपनाने वाले अर्थात् आचार विहीन युवकों के द्वारा आलिङ्गित होती थी । वह *'कुम्भा देवी' के नाम से विख्यात थी । लोग सिद्ध स्त्री की* बुद्धि से उसकी बहुत पूजा करते थे ॥ ८६ ॥

टिप्पणी—अतीत में अवन्ति नगरी कापालिकों का गढ़ थी । कापालिक मदिरा पीते, उन्मत्त एवं नग्न रहते थे । पूजा के समय अथवा सामान्य समय में भी उन्मत्त आचरण—स्त्री का आलिङ्गन एवं सम्भोग आदि—उनके प्रधान कर्म थे । उनका विश्वास था कि इससे उन्हें सिद्धि मिलेगी और उनके देव (शिव) प्रसन्न भी होंगे । आचार्य शङ्कर की भी इसी प्रकार के आचरण वाले कापालिक के साथ भेंट का उल्लेख मिलता है ।

क्षिप्रोपदेशलुब्धेन कुलदासेन मन्त्रिणा ।
सार्चिता प्रययौ हृत्वा पूजाराजतभाजनम् ॥ ८७ ॥

अतिशीघ्र उसके उपदेश से लुब्ध अथवा 'क्षिप्रा' नदी के तट पर दिये गये उस स्त्री के उपदेश से मुग्ध मन्त्री 'कुलदास' ने उसका बड़ा आदर सम्मान और पूजन किया । अवसर मिलने पर वह मन्त्री जी के चाँदी के बने पूजा के बर्तनों को ही लेकर चली गई ॥ ८७ ॥

साथ तक्षकयात्रायां चलद्घण्टा दिनत्रयम् ।
कल्पपाली कला नाम विदधे मद्यविक्रयम् ॥ ८८ ॥

वहाँ से भागने के बाद अनवस्थित व्यवहार वाली वह स्त्री तक्षक-यात्रा में (तक्षकनामक स्थान की यात्रा में; तक्षक के साथ यात्रा में, सूत्रधारिक यात्रा में, अथवा सर्प के समान कुटिल यात्रा में) अपना नाम 'कल्पपाली कला' रख कर तीन दिन तक मदिरा बेंचने का कार्य करती रही ॥ ८८ ॥

कटिघण्टाभिधानस्य सा क्षीबस्य तपस्विनः।
रात्रौ तत्र प्रसुप्तस्य घण्टाः सप्त समाददे ॥ ८९ ॥

वहाँ पर उसने रात्रि में सोये हुए, मदिरा से मत्त, 'कटिघण्टा' नामक तपस्वी के सात घण्टों को चुरा लिया ॥ ८६ ॥

ततः सा भूरिधत्तूरमधुना नष्टचेतसाम्।
पान्थानां सर्वमादाय निशि शूरपुरं ययौ ॥ ९० ॥

उसके बाद कपटपूर्वक अत्यधिक धत्तूर से मिश्रित मधु को खिलाकर और उसके फलस्वरूप बेहोश होने पर यात्रियों के सम्पूर्ण सामान को लेकर वह रात्रि में ही 'शूरपुर' को चली गई ॥ ६० ॥

एवं कृत्वा लवणसरणौ भारिकं भर्तृसंज्ञं
तस्मिन्निद्रावशमुपगते रात्रिमन्यैः क्षिपन्ती।
प्रातर्बद्ध्वा पृथुकटितटं संकटे दीर्घदाम्ना
मूर्ध्ना भारं दिवसमखिलं सा विलासैरुवाह ॥९१॥

समुद्र की ओर बढ़ने वाले मार्ग पर 'भर्त्ता' नाम वाले भारिक (बोझा ढोने वाले) को इसी प्रकार धत्तूर मिश्रित मधु खिलाकर और बेहोश हो जाने पर उसका सामान लेकर दूसरे लोगों के साथ रात्रि बिताती हुई प्रातःकाल अपने पृथु कटितट को लम्बी रस्सी से कसकर बाँधकर उस स्त्री ने विलासपूर्वक पूरे दिन तक अपने शिर पर चोरी किये गये अथवा ठगकर प्राप्त किये गये सामानों के गट्ठर को ढोया ॥ ६१ ॥

निःशुल्करतटैर्महाहिमपथैरुल्लङ्घ्य घोरान्गिरीन्
बम्बानाम दिनावसानसमये मान्याङ्गनारूपिणी ।
हेमन्ते वसनावगुण्ठितमुखी पञ्चालधारामठे
शीतार्ता घनलम्बकुम्बलवती चक्रे स्पृहां कातरा ॥९२॥

नितरा शुल्क अवघट, बड़े बड़े बर्फीले मार्गों से भयकर पर्वतों को लाँघ कर हेमन्त ऋतु के सायकाल के समय वह स्त्री 'बम्बई' पहुँची। उसका स्वरूप कुलीन स्त्री की भाँति था। उसने घूँघट से अपने मुख को ढँक रक्खा था। उसके सिर के बाल घने और लम्बे थे। वह शैत्य के कारण काँप रही थी। वहाँ पहुँच उसने पञ्चाल देश के राजा के द्वारा संस्थापित 'धारामठ' में रहने की स्पृहा की ॥ ६२ ॥

साथ सत्यवती नाम वृद्धा ब्राह्मण्यवादिनी ।
बभ्राम सागरद्वीपरशनाभरणां भुवम् ॥ ९३ ॥

अपने आपको सत्यवती नामक ब्राह्मणी बतलाने वाली उस वृद्धा स्त्री ने समुद्र पर्यन्त पृथिवी पर भ्रमण किया ॥ ६३ ॥

क्वचिद्योगकथाभिज्ञा क्वचिन्मासोपवासिनी ।
क्वचित्तीर्थार्थिनी मिथ्या सा परं पूज्यतां ययौ ॥ ९४ ॥

कहीं पर योगाभ्यास के बहाने; कहीं पर मासपर्यन्त उपवास करने के बहाने से, कहीं पर तीर्थयात्री बनकर, झूठी वह स्त्री लोगों के परम श्रद्धा का भाजन होती थी ॥ ६४ ॥

वेधधूननधूपेन मूर्खश्रद्धाविधायिनी ।
महतीं प्रतिपत्तिं सा लेभे भूपतिवेश्मसु ॥ ९५ ॥

प्रच्छन्न रूप से ज्ञात वस्तु को अज्ञातरूपसे प्रकाशित कर देने के कारण, मूर्खों को अपने प्रति श्रद्धालु बनाने वाली उस स्त्री ने राजाओं (धनिकों) के घर में अत्यधिक धन एवं सम्मान प्राप्त किया ॥ ६५ ॥

सेनास्तम्भं करिष्यामि राज्ञा दत्तेति वर्णनम् ।
भुक्त्वा हेम ययौ रात्रौ प्रत्यासन्ने रणोद्यमे ॥ ९६ ॥

वहाँ इसने राजा से कहा कि 'मैं आपके शत्रुपक्ष के सैन्य का स्तम्भन कर दूँगी।" परिणाम-स्वरूप राजाने उसे प्रभूत सम्पत्ति दी और उसका बड़ा सम्मान किया। किन्तु संग्राम के उपस्थित होने पर रात्रि में ही वह चुपके से भाग निकली ॥ ९६ ॥

केदाराम्बुगयाश्राद्धगङ्गाब्धिस्नानादिवादिनी ।
तत्फलं बन्धमादाय मार्थेभ्यः माग्रहीद्धनम् ॥ ९७ ॥

'केदारनाथ का दर्शन, गया में श्राद्ध और गंगासागर तथा गंगा में स्नान करके आयी हूँ। ऐसा कहकर तथा वहाँ के कुछ फल एवं बन्धन (ये सब झूठे होते थे) को धनिकों के सामने रखकर वह उनसे धन लिया करती थी ॥ ९७ ॥

नष्टच्छायोपदेशार्थं सार्थिता पथि दस्युभिः ।
रूढा शिबिकया वर्षं प्रपलाय्य ययौ ततः ॥ ९८ ॥

मार्ग में जब वह जा रही थी तब कुछ दस्युओं ने उसकी इसलिये प्रार्थना की कि वह उन्हें विस्मृति की अवस्था में सही मार्ग अथवा वस्तु का उपदेश करेगी। वह उनके द्वारा वर्षपर्यन्त शिविका (पालकी) पर चढ़ा कर ढोई जाती थी, किन्तु अन्त में वह वहाँ से भी भाग कर चली गई ॥ ९८ ॥

चीनानकानामण्डानि साथ रुद्राक्षमंत्रया ।
ददौ मूल्येन शिष्याणां रुद्राक्षाधिक्यवादिनी ॥ ९९ ॥

वहाँ से भागने के बाद वह स्त्री रुद्राक्ष के माहात्म्य को बतला-बतलाकर मूर्ख शिष्यों से मूल्य लेकर रुद्राक्ष के नाम पर चीनानक-(*वृक्षविशेष*) के अण्ड (*फल के भीतर की गुठली*) को बेचा करती थी ॥ ९९ ॥

बिलसिद्धिधृतश्रद्धागृहीताभरणाम्बरान् ।
सा चिक्षेपान्धकूपेषु पातालललनोत्सुकान् ॥ १०० ॥

उसके मन्त्रों के द्वारा पाताललोकगामी बिल (सुरंग) निर्माण में श्रद्धा रखने वाले लोगों के, जो कि पाताललोक की सुन्दरियों के लिये लालायित रहते थे, वस्त्र एवं आभूषण आदि को लेकर वह उन्हें अन्ध-कूपों में गिरा देती थी ॥ १०० ॥

अङ्गविद्धविषास्मीति सुस्निग्धविषगण्डकैः ।
सा बबन्ध गले मालां विषजाङ्गुलिकाभिधा ॥ १०१ ॥

कहीं कहीं वह यह कहा करती थी कि मेरा नाम 'विषजाङ्गुलिका' है। 'मेरे अङ्गों में विष व्याप्त है।' वह सुन्दर, चिकने, विषलिप्त गण्डकों (गंडा) में गुम्फित माला को अपने गले में बाँधा करती थी ॥ १०१ ॥

शुल्कस्थानेषु सर्वेषु शौल्किकेभ्यः स्वभावतः ।
मुहूर्तमोहनं पुष्पं सा दत्त्वा स्वेच्छया ययौ ॥ १०२ ॥

समस्त शुल्क (चुंगी) के स्थानों में अधिकारियों को 'मुहूर्तमोहन' नामक पुष्प, जो कि देखने में बहुत सुन्दर होता था, देकर वह स्वेच्छ-या, बिना किसी प्रकार के अवरोध के, एक स्थान से दूसरे स्थान को चली जाती थी ॥ १०२ ॥

वर्षाणां मे सहस्रं गतमधिकतरं वेद्म्यहं धातुवादं
सिद्धो मे वाक्प्रपञ्चः करतलकलितं त्रैपुरं कामतन्त्रम् ।
उर्व्यां गर्वस्वीकृतसकलगुरुग्राममक्त्या तयास्या-
मित्याख्यानेन नीताश्चरणतललिहष्टकुराः कुक्कुरत्वम् ॥ १०३ ॥

वह लोगों से कहा करती थी—'मेरी आयु के कई सहस्र वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। मैं धातु (सोना, चाँदी आदि) बनाने की कला को जानती हूँ। मुझे सरस्वती सिद्ध है। तीनों लोकों का कामतन्त्र मेरे हस्तगत है। गर्व के कारण सम्पूर्ण गुरुसमूहों की

भक्ति को कम करनेवाली उस स्त्री के द्वारा कथित उक्त बातों को सुनकर बड़े बड़े ठक्कुर (समाज के विशिष्ट एवं धनी व्यक्ति) भी, उसके चरणचुम्बन को करके कुक्कुरभाव को प्राप्त होते थे। १०३ ॥

पूजामज्ञा भजन्ते जयनुतिषु नतिं दिक्षु काम्बोजभोजाः
सेवाशुष्कास्तुरुष्काः परिचरणरसे किं च चीनाः प्रलीनाः।
उत्कण्ठार्तास्त्रिगर्ताः परिचरणविधौ पीडयन्त्येव गौडा
दम्भारम्भेण तस्या विदधति कुसुमोत्सङ्गतामङ्गवङ्गाः॥१०४॥

उसके, दम्भपूर्ण कार्य से पूजा के लिये तत्पर काम्बोज की प्रजा जयकार पूर्ण स्तुतियों के सन्दर्भ में उसके सामने नमन किया करती थी, तुरुष्क (यवन-जाति-विशेष) उसकी सरस सेवा किया करते थे; चीनदेश की जनता भी क्या उसकी परिचर्यारूपी रस में नहीं लीन रहा करती थी? अर्थात् चीनी लोग भी उसकी सेवा में आनन्द समझते ही थे। त्रिगर्त (त्रिगर्त को 'जलधर' भी कहा जाता था। इसकी स्थिति दक्षिण-पश्चिम भारत में थी) की जनता भी उसके दर्शन एवं पूजन के लिये उत्कण्ठित रहा करती थी; गौड प्रदेश की प्रजा भी कष्ट सहन कर भी उसकी सेवा शुश्रूषा करती थी, अङ्ग एवं वङ्ग देश के निवासी भी उसकी पूजा के लिये प्रसून लिये तत्पर रहा करते थे॥ १०४॥

टिप्पणी—स्कन्दपुराण के अनुसार गौड देश की स्थिति बंगाल से प्रारम्भ कर ईशान कोण की ओर बतलाई गई है :—"वंगदेशं समारभ्य भुवनेशान्तगं शिवे। गौडदेशः समाख्यातः...॥" बंगाल में आधुनिक भागलपुर के आस पास का प्रदेश अंग कहा जाता था।

भ्रान्त्वा महीं जलनिधिग्रथितामशेषां
मायाविनीतिविदितानिरतोन्नतिः सा।
प्राप्ता पुनर्निजपदं तनुनीरशेषा
क्षीणोऽपि देहमिव कस्त्यजति स्वदेशम्॥ १०५॥

सागर पर्यन्त अशेष पृथिवी का भ्रमण कर, माया (छल-कपट) और दुर्नीति के माध्यम से निरन्तर उन्नति करने वाली वह स्त्री शारीरिक बल और उत्साह के स्वल्पावशिष्ट हो जाने पर अपने मूल स्थान को लौट आयी। क्षीण शरीर की भाँति, ऐसा कौन है जो अपने देश का परित्याग ही कर दे॥ १०५॥

सा सर्वदेशपरिशीलितवेषभाषा
प्रभ्रष्टभूपतिसुताहमिति ब्रुवाणा।
छिन्नाङ्गुलिद्विजनखण्डितनासिकाग्रा
ललाटनीलतिलकैर्विदिता ममैव॥ १०६॥

नापित 'कलानिधी' से कह रहा है कि—स्वदेश लौटने पर सम्पूर्ण देश के वेष एवं भाषा से अभिज्ञ वह स्त्री 'मैं राज्यच्युत राजा की लड़की हूँ' इस प्रकार लोगों से कहती थी। उसकी अङ्गुलियाँ एवं दाँत छिन्न हो गये थे। नासिका भी खण्डित थी। उसके ललाट पर नीले नीले तिलक (तिल) पड़े हुये थे (वृद्धावस्था में लोगों के शरीर पर तिल पड़ जाते हैं)। उसका मैंने ही पहचाना॥ १०६॥

सा चेत्प्रकीर्णधनगेहनिधानगर्भी
गृह्णाति लोभजननी जननीपदं ते।
तत्कामिलोकसकलार्थसमृद्धिमेतां
यत्नादिना सुतनु हस्तगतामवेहि॥ १०७॥

हे सुन्दरी! सम्पूर्ण घर में फैले हुये धन के खजाने की रक्षा करने वाली गर्भिणीरूपा, लोभ की माता वह स्त्री यदि तुम्हारे जननी-पद को प्राप्त करे तब बिना प्रयत्न के ही कामीजनों की इस सम्पूर्ण धनसमृद्धि को अपने हस्तगत ही समझो॥ १०७॥

तस्मात्तामहमेव कूटकुटिलां गत्वा स्वयं त्वत्कृते
सर्वतां सकलार्थसार्थसरणेः सिद्ध्यै समभ्यर्थये

किं किं वा कथयामि नैव जगतीं जानाति जेतुं धिया
नास्त्यन्या गतिरित्युदीर्य हितकृत्पूर्णं ययौ नापितः ॥१०८॥

इति श्रीव्यासदासापराख्यक्षेमेन्द्रविरचितायां समयमातृकायां चरितोपन्यासो नाम द्वितीयः समयः ।

इस लिये मैं स्वयं जाकर सम्पूर्ण धन की प्राप्ति के उपाय की सिद्धि के लिये कपट के कारण कुटिल, सब कुछ जानने वाली, उसी को से तुम्हारी माता (रक्षाकर्त्री) माता बनने के लिये प्रार्थना करती हूं। अधिक क्या क्या मैं कहूं, इस जगती को बुद्धि से जीतने का उपाय एकमात्र वही जानती है। इसके अतिरिक्त कोई अन्य उपाय नहीं है।" ऐसा कहकर 'कलावती' का शुभ चिन्तक एवं हितकर्ता वह नापित अतिशीघ्र वहाँ से चला गया ॥ १०८ ॥

इस प्रकार क्षेमेन्द्र के द्वारा निर्मित समयमातृका का 'चरितोपन्यास' नामक द्वितीय समय पूर्ण हुआ।

अथ सर्वार्थजननीं जननीं वेश्ययोषिताम् ।
मित्रे स्वभावमलिनामानेतुं गन्तुमुद्यते ॥ १ ॥
संकोचक्लेशसंजातां शूरतामिव रागिणाम् ।
आसन्नश्रीवियोगानां स्वापग्लानिरजायत ॥ २ ॥

इसके अनन्तर मित्र नापित के, सम्पूर्ण अर्थों की जननी, स्वभावतः मलिन अर्थात् दुष्ट स्वभाववाली, युवती वेश्याओं की जननी (रक्षाकर्त्री) को लाने के हेतु जाने के लिये उद्यत होने पर, अतिनिकट भविष्य में सम्पत्ति एवं शोभा के नाश को प्राप्त होने वाले कामुकों की सकोच एवं क्लेश से उत्पन्न शूरता की भाँति प्राणियों में निद्रा की अलसता उत्पन्न हुई ॥ १-२ ॥

शनैर्दिनधने क्षीणे स्वल्पशेषाम्बरः परम् ।
अलम्बत क्षणं रागी संध्याधाम्नि दिनेश्वरः ॥ ३ ॥

शनैः शनैः दिनरूपी धन के क्षीण होने पर बहुत कम अवशिष्ट अम्बर (किरणरूपी वस्त्र अथवा सायंकाल के समय सकुचित आकाश) वाला रक्त वर्ण सूर्य क्षण भर के लिये सन्ध्या के तेज में आकाश से लटक गया ॥ ३ ॥

संध्यया क्षिप्ररागिण्या निरस्तः परितापवान् ।
नीरागः सागरजले चिक्षेप तपनस्तनुम् ॥ ४ ॥

अतिशीघ्रता से राग (अनुराग अथवा लालिमा) को धारण करने वाली सन्ध्या के द्वारा परित्यक्त अत सन्तप्त एवं अनुरागविहीन सूर्य ने अपने शरीर को सागर के जल में फेंक दिया ॥ ४ ॥

ततस्तिमिरसंभारैरारेभे प्रसाधने ।
कृष्णागुरुमृगोद्भूतधूपधूमोद्गमायितम् ॥ ५ ॥

तदनन्तर वेश्याजनों के प्रसाधन के समय अन्धकार-समूह के द्वारा कृष्ण अगुरु-समूह से उत्पन्न धूप के हवन के अनन्तर उद्गत धूप की भाँति आचरण किया गया अर्थात् कृष्ण अगुरु के धुएँ की भाँति अन्धकार चारों ओर फैल गया ॥ ५ ॥

यामिनीकामिनीकीर्णकेशपाशोपमं तमः ।
दीपचम्पकमालाभिर्विश्रान्तिनिरमं ययौ ॥ ६ ॥

निशारूपी सुन्दरी के प्रकीर्ण केशपाश की शोभावाला अन्धकार दीपकरूपी चम्पक की मालाओं से अवरुद्ध एवं शोभायमान हो रहा था, अर्थात् अँधेरे के कारण घरों में दीपक जल चुके थे ॥ ६ ॥

टिप्पणी—सुन्दरी स्त्रियाँ अपने बालों में चम्पकमाला को शोभा के लिये धारण करती हैं। इसी प्रकार निशा सुन्दरी ने भी दीप स्वरूप चम्पकमाला को मानो अपने अन्धकार रूपी बाल में लगा लिया हो।

अथ स्वर्वेश्यवनितासापत्न्यकलहच्युतम् ।
अदृश्यत शशाङ्कार्धं दन्तपत्त्रमिवाम्बरे ॥ ७ ॥

इसके बाद स्वर्ग की अप्सराओं के सापत्न्यकलह (जब एक ही पुरुष से प्रेम करने वाली अनेक स्त्रियाँ उसके साथ सहवास करने के लिये परस्पर लड़ती हैं तो उनका यह लड़ना 'सापत्न्यकलह' शब्द से अभिहित किया जाता है।) के समय गिरे हुये दन्तपत्र (हाथी के दाँत से निर्मित स्त्रियों के कपोल पर धारण करने का आभूषण विशेष) की भाँति आकाश में अर्द्धचन्द्र दृष्टिगोचर हुआ ॥ ७ ॥

रजनीरमणीकान्ते दिनान्ते तुहिनत्विषि ।
उदिते मुदिते लोके बभूव मदनो मदः ॥ ८ ॥

सन्ध्या समय में निशा नायिका के प्रियतम चन्द्रमा के उदित होने पर प्रसन्न जन में मदनोत्सव मनाया गया ॥ ८ ॥

भुक्तां महल्लकसंपदमन्दरश्रीः
कृत्वा जनन्याप्यमात्रदशावशेषाम् ।

वेश्येव काममनपेक्षितपक्षपाता

क्षिप्रं शशाङ्कनिभवामरणा बभूव ॥ ९ ॥

अन्वार्थ के दिन के समय भागी गई सूर्यरूपी सम्पत्ति को मनुष्यों के द्वारा एकमात्र स्मरण की अवस्था को पहुँचा कर अर्थात् एकमात्र स्मरण की वस्तु बनाकर, किसी भी व्यक्ति के साथ पक्षपात (प्रेम का लगाव) की अपेक्षा न रखने वाली वेश्या की भाँति शीघ्र ही शशाङ्क-सम्पत्तिरूपी आभरण को धारण कर लिया ॥ ९ ॥

टिप्पणी—व्यवहार में देखा यह जाता है कि वेश्यायें किसी भी व्यक्ति की सम्पत्ति को भोगकर उसके विनष्ट हो जाने पर किसी भी प्रकार के शोक मोह का प्रदर्शन अथवा अनुभूति किए बिना झटिति दूसरे व्यक्ति में अनुरक्त जाती हैं। इसी प्रकार पूर्वभुक्त दिनमणिरूपा सम्पत्ति के नाश के अनन्तर अन्य अस्या नायिका ने बिना एक क्षण के शोकानुभूति के शीघ्र ही चन्द्रमा ... नोग में संलग्न हो गई।

ततः कर्तुं प्रवृत्तेषु वेश्यानेश्माग्रसद्मसु ।

विटेषु मधुलुब्धेषु निर्व्यापारं गतागतम् ॥ १० ॥

तदनन्तर वेश्याओं के आवास भवनों के सम्मुख मधु के लोभी भ्रमरों की भाँति विटों (कामुकों) के निष्प्रयोजन गमनागमन करने में प्रवृत्त होने पर ॥ १० ॥

द्वाराग्रदत्तकर्णासु ग्रहणग्रहणेप्सया ।

कुट्टनीषु तृणापातेऽप्युन्मुखीषु मुहुर्मुहुः ॥ ११ ॥

व्यक्तियों को फँसाने की इच्छा से गृह के प्रवेशद्वार पर कान लगाये वालो, एक तृण के गिरने पर भी अर्थात् स्वल्प भी खटखटाहट होने पर किसी व्यक्ति के आगमन की आशा से, कुट्टनियों के बारम्बार द्वार की ओर उन्मुख होने पर ॥ ११ ॥

दिनकामुकनिर्माल्यमाल्यताम्बूलिनीं सुरम्।

संमृज्य मज्जगृह्यासु वेश्यास्वन्यप्रतीक्षया ॥ १२ ॥

वेश्याओं के, दिन के समय कामुकों के द्वारा धारण करके फेंकी गई मालाओं एवं ताम्बूल से प्रकीर्ण पृथिवी को स्वच्छ कर दूसरे व्यक्तियों की प्रतीक्षा से, शय्या के सजाने पर ॥ १२ ॥

आस्तीर्यमाणखट्वान्तः किङ्किणीक्वाणसंज्ञया ।
पारावतेषु विरुतैर्व्रजत्सु स्मरवन्दिताम् ॥ १३ ॥

बिछाई गई शय्या के मध्य में लेटी वेश्या के पैर में बँधे नूपुर के झंकार को सुनकर शब्द करने वाले कबूतरों के कामदेव के यशोगान को करने वाले बन्दिभाव को प्राप्त होने पर ॥ १३ ॥

टिप्पणी—कबूतर नूपुर के शब्द को सुनकर बोलने लगते हैं। उनका बोलना कामोत्तेजक माना गया है। अतः शृङ्गार के साहित्य में उन्हें कामदेव के यश को गाने वाले बन्दी जनों के रूप में चित्रित करने की प्रथा है।

गृहीतस्योपरि कथं गृह्यते ग्रहणं पुनः ।
पूर्वं किं नागतोऽसीति वदन्तीष्वपरासु च ॥ १४ ॥

प्रेम पात्र के ऊपर अर्थात् स्ववश के ऊपर पुनः किस प्रकार से प्रेम-पाश फेंककर उसे अत्यधिक वश में किया जाता है, इस बात के दर्शन के लिये कामुक-प्रेमी के आने पर 'क्या आप कभी पहले यहाँ नहीं आये हैं?' ऐसा कुछ वेश्याओं के कहने पर ॥ १४ ॥

उदराबद्धवसनैर्जटाग्रन्थिनिपीडनम् ।
कुर्वाणैर्वारकलहे प्रारब्धे शठदैशिकैः ॥ १५ ॥

उदर में वसन (फेंटा) बाँधने वाले, जटाओं की गाँठ को कसकर बाँधने वाले, शठ, मठाधीशों के द्वारा अथवा दुष्ट स्वभाव वाले स्थानीय व्यक्तियों के द्वारा वारकलह (वेश्याओं के साथ किया जाने वाला कामोत्तेजक प्रेम कलह) प्रारम्भ करने पर ॥ १५ ॥

स्वयं मात्रा च युगपद् गृहीते ग्रहणद्वये ।
वारे प्राप्ते तृतीये च यान्तीष्वन्यास्वदर्शनम् ॥ १६ ॥

स्वयं माता के द्वारा एक साथ दो व्यक्तियों से ग्रहण (निर्धारित

द्रव्य अर्थात् एडवांस) ले लेने के अनन्तर तीसरे व्यक्ति की पारी आने पर कुछ वेश्याओं के अदृष्ट हो जाने पर अर्थात् संभोगार्थ गृह के भीतर चली जाने पर ॥ १६ ॥

अनायाते परिचिते प्रत्याख्याते नवागते ।
उभयभ्रंशशोकेन सीदन्तीष्वपरासु च ॥ १७ ॥

परिचित व्यक्ति के न आने पर और नवागत व्यक्ति के लौटा देने पर; इस प्रकार उभय विधि से हुई हानि के शोक से कुछ वेश्याओं के शोक-सन्तप्त होने पर ॥ १७ ॥

टिप्पणी—कुछ वेश्यायें प्रतिदिन आनेवाले कामुक व्यक्तियों का मार्ग देख रही थीं अतः नवागत व्यक्तियों को उन लोगों ने लौटा दिया। किन्तु कार्य-कारणवश नियतकामुकों के भी न आने पर—इस प्रकार उभयथा हानि से—वे नवागतों के लौटा देने के विषय में पश्चात्ताप करने लगीं।

भुक्तोज्झितानामन्यासु पुनः प्राप्तार्थसंपदाम्।
जननीं दुर्जनीकृत्य कुर्वाणासु प्रसादनम् ॥ १८ ॥

एक बार संभोग करके छोड़े गये और पुनः धन देकर संभोग की इच्छा करने वाले व्यक्तियों के लिये बनावटी रूप से माता को दुर्जन बनाकर कुछ वेश्याओं के उनका प्रसादन करने पर ॥ १८ ॥

टिप्पणी—एक बार संभोग के अनन्तर यदि कोई भी व्यक्ति पुनः धन देकर और संभोग की इच्छा व्यक्त करता है तो वेश्याएं उसे अपने सौन्दर्य के प्रति अत्यधिक आकृष्ट जानकर माता से इस व्यक्ति के लिये आग्रह करती हैं कि एक बार इस व्यक्ति को और समय दे दिया जाय। किन्तु वह व्यक्ति और पैसा दे एतदर्थ माताएं उसे दुबारा समय देने में आनाकानी करती हैं। वेश्याओं का माता से समय देने के लिये आग्रह करना और माताओं का समय न देना—ये दोनों ही बातें—बनावटी हुआ करती हैं।

यदि त्वां सा सुजननी न जानीयात्सुधामयम् ।
अभविष्यदुपायो मे तत्कोऽस्मो प्राणधारणे ॥ १९ ॥

जब इन कामुकों को दुबारा समय मिल जाता था तब वे तरुणी

वेश्याएँ उनसे इस प्रकार कहा करती थीं—"सरल स्वभाववाली मेरी माता अमृत के समान सरस एवं मधुर तुम को यदि पुनः समय न देती तो तुम्हारे वियोग में मरने वाली मेरे लिये प्राण-धारण करने का कौन सा उपाय हुआ होता ॥ १९ ॥

नित्यावहारकुपितं सर्वार्थैरुपकारिणम् ।
ऋजुमाराधयन्तीषु विदग्धासुतवैरिषु(?) ॥ २० ॥

विदग्ध वेश्याओं के; सब प्रकार से धन आदि देकर उपकार करने वाले, तथापि वेश्याओं के द्वारा नित्य ही धन आदि के छीन लेने से कुपित, सरल व्यक्ति को प्रसन्न करने के लिये मनाने पर ॥ २० ॥

अन्यनाम्ना प्रविष्टानां कलहे कूटकामिनाम् ।
कुट्टनीषु रटन्तीषु घण्टारणरणोत्कटम् ॥ २१ ॥

कुटिल और प्रच्छन्न कामुकों के अन्य के नाम से गृह के भीतर प्रविष्ट होकर कलह करने पर घण्टा के 'रण रण' शब्द की भाँति कर्ण-कटु शब्दों से कुट्टनियों के बड़बड़ाने पर ॥ २१ ॥

टिप्पणी—प्रसिद्ध एवं उच्च वेश्याओं के यहाँ लोगों के लिये समय निश्चित रहता है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी अपनी पारी में ही गृह के भीतर जाता है। किन्तु कुछ ऐसे भी कुटिल एवं प्रच्छन्न कामुक होते हैं जो दूसरे का नाम बतलाकर अन्दर जाते हैं और वहाँ पहले से ही स्थित अथवा बाद में पहुँचने वाले यथार्थ व्यक्ति से उनका झगड़ा हो जाता है। इस बात को देख कर कुट्टनी स्त्रियाँ बिगड़ने लगती हैं।

प्रसुप्तकटकर्षविक्षीणक्षुद्रामृते गृहे ।
सखीभवनमन्यासु यान्तीष्वादाय कामुकम् ॥ २२ ॥

भवन के फर्श अथवा चटाई पर सोये हुए मत्त, क्षीण (रति के कारण खिन्न) कामुकों के द्वारा घर के भर जाने पर नवागत कामुकों को लेकर अन्य वेश्याओं के अपनी सखी के घर चली जाने पर ॥ २२ ॥

बालमार्जारिकाह्वानव्याजेनान्यासु वर्त्मनि ।

कटाक्षैः कलयन्तीषु दूरात्कामुकमामिषम् ॥ २३ ॥

दूर से ही मार्ग में आते हुये, अपने सौन्दर्य से प्रभावित कामुक को देख कर बिल्ली के बच्चे को बुलाने के बहाने से अन्य वेश्याओं के अपने कटाक्ष से इशारा करने पर ॥ २३ ॥

एकः स्थितोऽन्तः प्राप्तोऽन्यः परस्याद्यैव दुर्ग्रहः ।

किं करोमीति जननीं पृच्छन्तीष्वपरासु च ॥ २४ ॥

कुछ वेश्याओं के द्वारा अपनी माता से इस प्रकार पूछने पर— "एक व्यक्ति घर में है, दूसरा भी आ गया है और तीसरा भी आज के ही सम्भोग के लिये दुराग्रह कर रहा है। ऐसी अवस्था में मैं क्या करूँ ?" ॥ २४ ॥

निशा दीर्घा नवः कामी तनयेयं कनीयसी ।

व्यत्येति कालहाराय वृद्धावर्गे कथोद्यते ॥ २५ ॥

रात्रि बड़ी है, यह नवागत कामी भी युवक है और मेरी तनया अभी किशोरी अत: व्यग्र है इस बात का ध्यान करके समय व्यतीत कर देने के लिये वृद्धाओं (कुट्टनियों) के कथा (समय व्यतीत करने वाली कहानी) कहने के लिये उद्यत होने पर ॥ २५ ॥

नाज्ञाताद् गृह्यते भाटी चरन्ति म्लेच्छगायनाः ।

इत्यन्यासु वदन्तीषु शून्यशय्यासु लज्जया ॥ २६ ॥

"अज्ञात व्यक्तियों से पुरस्कार अथवा पारिश्रमिक (शुल्क) नहीं ग्रहण किया जाता, क्योंकि चारों ओर म्लेच्छों की भाँति गाना गाने वाले अथवा म्लेच्छों का गाना गाने वाले अर्थात् म्लेच्छों की स्तुति करने वाले अथवा गाना गाने वाले म्लेच्छ भ्रमण किया करते हैं" अपनी शून्य शय्या पर लज्जापूर्वक इस प्रकार कुछ वेश्याओं के कहने पर ॥ २६ ॥

आयाते वार्यमाणेऽपि निर्माने क्षीणकामुके ।

व्याजकुक्षिशिरःशूलानन्दिनीषु परासु च ॥ २७ ॥

मान-सम्मानरहित अतः रोकने पर भी घर से क्षीण कामुक के अन्दर चले जाने पर कुक्षि एवं शिर की उग्र पीडा के बहाने अन्य वेश्याओं के क्रन्दन करने पर ॥ २७ ॥

मुग्धकामुकमित्राणां स्वेच्छया व्ययकारिणाम् ।
प्रस्तुते स्थिरलाभाय कुट्टनीभिर्गुणस्तवे ॥ २८ ॥

अपनी इच्छानुसार, निःसंकोच धन का व्यय करने वाले, भोले-भाले कामुक मित्रों के आने पर उनसे सार्वकालिक लाभ अथवा प्रचुर लाभ के लिये कुट्टनियों के उनका गुण गान प्रस्तुत करने पर ॥ २८ ॥

लज्जामहे वयं स्वल्पधनेनेति निभाविनि ।
गण्यमाने दशगुणे धूर्तैः प्रथमकामिनाम् ॥ २९ ॥

वेश्या के यहाँ प्रथमागत कामी व्यक्ति के सम्मुख "हे मानिनि! हम धन की कमी के कारण लज्जित हो रहे हैं" ऐसा कह कर धूर्त के द्वारा दशगुना द्रव्य दे देने पर ॥ २९ ॥

टिप्पणी—वेश्याओं के यहाँ कुछ ऐसे धूर्त नियुक्त रहते हैं जिनका कार्य नवीन कामी के सामने उक्त प्रकार का नाटक रचना होता है। इससे नवागत कामी ठगा जाता है और अनुभव एवं ज्ञान न रहने से वह भी कम से कम दशगुना द्रव्य गिन कर चला जाता है।

प्रवासमन्त्रेरधिकारिसूनोः स्थिताबद्धा तनया ममेति ।
काचिद्वदन्ती विजने निगूह्य जग्राह भाटीं त्रिगुणां मन्दकात् ॥३०॥

'मेरी पुत्री प्रवास में गये हुये अधिकारी (मन्त्री अथवा राज का कोई उच्च अधिकारी) के पुत्र के लिये रोककर (संभोग-विरतकर) रक्खी गयी है। फिर भी मैं आप का उससे सगम करा दे रही हूँ" ऐसा कहती हुई कुट्टनी एकान्त में छिपाकर मन्दबुद्धि व्यक्ति से त्रिगुणित भाटी (सम्भोग-शुल्क) ले रही थी ॥ ३० ॥

टिप्पणी—प्राचीन काल की यह सामान्य प्रथा थी कि जब कोई वेश्या-पुत्री तरुणी होती थी तब उसके साथ प्रथम-संभोग राजकुमार, मन्त्रिपुत्र अथवा कोई

राज्य का उच्च कर्मचारी ही करता था। यह सौभाग्य एक मात्र राज्य से संबद्ध व्यक्तियों के लिये ही सुरक्षित रहता था, उनके प्रथम संभोग के अनन्तर ही वेश्यायें सामान्य जनों के संभोग के लिये सुरक्षित होती थीं।

अल्पं ममैतद्दुहितुर्न योग्यं न च क्षणोऽस्ति त्वमदृष्टपूर्वः।

इति ब्रुवाणापि चिरं पटान्ते गाढं गृहीत्वा न मुमोच काचित् ॥३१॥

कोई कुट्टनी इस प्रकार कहती थी—यह शुल्क अल्प है अतः तरुणी एवं सुन्दरी मेरी पुत्री के योग्य नहीं है, आज समय नहीं है, तुम पहले पहल आये हो, मैंने तुम्हें इसके पूर्व नहीं देखा है। ऐसा कहती हुई भी वह वृद्धा कामुक के वस्त्राञ्चल को कसकर पकड़े हुई थी। वह उसे छोड़ नहीं रही थी ॥ ३१ ॥

अमात्यपुत्रेण सुताद्य नीता क्षमस्व रात्रिं प्रणयान्ममैकाम्।

उक्त्वेति काचिज्जरती चकार रिक्तस्य सक्तस्य च विप्रलम्भम् ॥३२॥

'आज मेरी पुत्री अमात्यपुत्र के द्वारा ले जाई गयी है, अतः आप मेरे प्रेम के कारण आज एक रात क्षमा करें" ऐसा कह कर किसी वृद्धा कुट्टनी ने रिक्त अर्थात् धन से रहित तथापि उस वेश्या पर आसक्त व्यक्ति को ठग लिया ॥ ३२ ॥

दातव्यं न ददाति वारविरहे टङ्कोऽद्य लब्धस्थलः

क्रूरः सैन्यपतिः प्रयाति रिपुतां सत्यैव वारं विना।

वृत्तिर्देवगृहात्कथं नु दिविरे वारोज्झिते लभ्यते

वारीपेटकवारतां गतवती प्रोवाच काचिन्मसीम् ॥ ३३ ॥

"आज स्थान प्राप्त करने वाला 'टक' अपने दिन अथवा पारी (क्रम) के न रहने पर मेरे दातव्य (देय) को नहीं दे रहा है। अपने दिन अथवा क्रम के न रहने पर भी, समय न मिलने के कारण, क्रूर-सेनापति शीघ्र ही रिपुता को प्राप्त हो रहा है अर्थात् क्रुद्ध होकर वैरभाव मानने लगा है। वार के व्यतीत हो जाने पर देवगृह (मन्दिर) से किस भाँति वृत्ति (प्रति दिन सायंकाल के समय नृत्यगान करने

वाली वेश्याओं के लिये देय धन) प्राप्त होगी ?' इस प्रकार की बातों को उद्यान-गृह के किनारे खड़ी किसी वेश्या ने अपनी सखी से कहा ॥३३॥

अन्यास्ताः सखि कूटपाशनिचयैराकृष्टमुग्धश्रियः
कुर्मः किं वयमेव वञ्चनकलां जान्या न जानीमहे ।
सद्भावे सततं स्वभावविमुखः सर्वाभिशङ्की जनो
वाक्यैः क्वापिदिति प्रकाशमकरोन्मक्ताजेवावर्जनम् ॥३४॥

कपटजाल का विस्तार करके भोले भाले व्यक्तियों की धन सम्पत्ति को खींच लेने वाली भी अन्य कुछ वेश्यायें अपनी अपनी सखियों से कहती हैं "हे सखि ! क्या किया जाय। हम लोग तो प्रकृत्या वञ्चन की कला अर्थात् दूसरे को ठगने का तरीका जानती ही नहीं हैं। वचनों से सद्भाव के निरन्तर प्रदर्शित करने पर भी सब पर शङ्का करने वाला व्यक्ति स्वभावतः विमुख हो जाता है"। इस प्रकार किसी वेश्या ने अनुरक्त अथवा कामुक व्यक्तियों की सरलता (सिधाई) का प्रतिषेध किया ॥ ३४ ॥

... सकलैव सा रसवती नीता क्षणेन क्षपा
पापेन क्षपितं दिनं निशि तया शय्यावहारः कृतः ।
इत्युद्वेगपरिग्रहग्लपितधीः पृष्टः सहासैर्विटै-
र्व्याचष्टे कुट्टनीकुटिलतामक्लिष्टकूटां विटः ॥ ३५ ॥

हँसी करनेवाले अथवा हँसमुख विटों के द्वारा वेश्या के साथ सम्भोग की वार्ता के पूछे जाने पर हृदयस्थित उद्वेग के कारण मलिन बुद्धि वाला कोई विट सामान्य छल कपट से परिपूर्ण, कर्कश स्वभाववाली कुट्टनी की कुटिलता का वर्णन इस प्रकार किया:—पापा उत्सव (नाच-गाना आदि मनोरञ्जन) के द्वारा सम्पूर्ण सरस रात्रि व्यतीत कर दी गई। दिन भी इसी प्रकार समाप्त हो गया। आज की रात में भी वह (वेश्या) शय्या पर गई ही नहीं" इस प्रकार बाह्य क्रिया कलापों में फँसा कर मुझे रतिजन्य सुखानुभूति से वञ्चित ही रक्खा गया ॥३५॥

नास्मद्गेहप्रवेशः सगुणजनकथाकेलिमात्रोपचारै-
र्व्यापाराम्ममारप्रवसदवसरे वासरे कामुकानाम् ।
वृत्तिर्वृत्तानुरोधात्कथमपि विदिताद् गृह्यते यामवत्या-
मित्युच्चैः काचिदूचे बहुगतगणिकावर्गगर्वोपशान्त्यै ॥३६॥

'सगुणजनों—गुणशाली व्यक्तियों-की सरस कथाकेलिमात्र के उपन्यास (प्रस्ताव) पूर्वक सम्भोग-क्रीडा से रहित अवसर वाले दिन के समय हमारे घर में कामुक व्यक्तियों का प्रवेश नहीं होता। रात्रि में कथमपि जाने गये चरित्र के प्रसङ्ग से कामुकों का व्यवहार भली भाँति जाना जाता है।" इस प्रकार ऊँचे स्वर में किसी वेश्या ने बहुत से व्यक्तियों के साथ सम्पर्क करनेवाली गणिकाओं के मान मर्दन के लिये कहा ॥ ३६ ॥

कुरु तरलिके हारं कण्ठे गृहाण मनोहरे
वलययुगलं लीले लीलां विलोकय मेखलाम् ।
भज मलयजं चित्रे रात्रिः प्रयाति कठोरता-
मिति चतुरताचार्यस्तासां बभूव सखीजनः ॥ ३७ ॥

इति श्रीव्यासदासापराख्यक्षेमेन्द्रनिर्मितायां समयमातृकायां प्रदोषवेश्यालापवर्णनं तृतीयः समयः ।

"हे तरलिके! अपने कण्ठ में हार धारण करो, हे मनोहरे! कटक-युगल को धारण करो। हे लीला करनेवाली सखि! चंचल अपनी मेखला को देखो। हे विचित्र स्वभाववाली! मलयज चन्दन को धारण करो। रात्रि कठोरता (प्रौढता एवं सघनता) को प्राप्त हो रही है।" इस प्रकार कुछ युवतियों की सखियाँ चतुरता में उनकी आचार्य हो गई अर्थात् आचार्य के समान उन्हें शिक्षा देने लगीं ॥ ३७ ॥

क्षेमेन्द्र के द्वारा निर्मित समयमातृका में प्रदोष के समय वेश्याओं के आलाप के वर्णन पूर्वक तृतीय अध्याय समाप्त हुआ।

अस्मिन्नवसरे धूर्तवार्तालीना सुकुट्टनी ।
नापिताख्येन तमसा रजनीव सहायया ॥ १ ॥

संध्या की इसी वेला में धूर्त लोगों की वार्ता में तल्लीन अर्थात् बड़ी ही तन्मयता के साथ धूर्तों की वार्ता करती हुई एक प्रवीण कुट्टनी, अन्धकार के साथ रात्रि की भाँति, नापित के साथ आई ॥ १ ॥

अस्थियन्त्रशिरातन्त्रीलीनान्त्रोदरकुंचिका।
शुष्ककायकरङ्काङ्कावृतेव कटपूतना ॥ २ ॥

उसके शरीर में हड्डियाँ और नश मात्र ही अवशिष्ट थीं। उसका पेट एकदम धँसा हुआ था। वह गोदी में खोपड़ी लिये हुये वस्त्राच्छादित प्रेतात्मा की भाँति प्रतीत होती थी ॥ २ ॥

वहन्ती सुबहुच्छिद्रं शरीरं चर्मबन्धनम् ।
अन्तर्गतजगद्वयाजशिक्षाशकुनिपञ्जरम् ॥ ३ ॥

बहुत से छिद्रों से सबलित चर्म के बन्धनवाले, शिक्षा के लिये गृहीत अन्तर्गत (हस्तगत) जगत् रूपी पक्षी के पञ्जर-रूप शरीर को धारण किये हुए थी ॥ ३ ॥

सर्वस्वग्रहणेनापि लम्बमानमुखी सदा ।
तुलेवाङ्कसहस्राङ्का त्रैलोक्यतुलने कृता ॥ ४ ॥

सब कुछ ग्रहण कर लेने पर भी और कुछ लेने के लिये वह सर्वदा मुख फैलाये रहती थी अर्थात् सन्तोष नाम की कोई भी चीज उसके पास न थी। वह त्रिलोकी को नापने के लिये अङ्क (मध्य) में सहस्रों अङ्क (गम्भार स्थल) वाली कत्ति की तुला की भाँति थी ॥ ४ ॥

समा समस्तने पापे सपापावमगाधमे ।

धात्रा कृत्रिमरागस्य स्वरमालेव निर्मिता ॥ ५ ॥

समान धनवाले पापियों एवं अधम व्यक्तियों में वह समान थी। विधाता ने उसे कृत्रिम राग (स्वर, पक्षान्तर में प्रेम) की 'स्वरमाला' के समान बनाया था ॥ ५ ॥

सुस्पष्टदृष्टदीर्घाग्रदशना भीषणाकृतिः ।
प्रसवक्रूरकोपेन संस्थितास्थिरता शुनी ॥ ६ ॥

उसके दीर्घ एवं भयङ्कर दाँत इतने बड़े बड़े थे कि वे बहुत ही स्पष्ट ढंग से बाहर दिखलाई पड़ते थे। उसकी आकृति भयङ्कर थी। उसे देखने से मालूम पड़ता था मानो प्रसव के भयङ्कर कोप से अर्थात् प्रसव की तीव्र वेदना के कारण कुतिया ने स्थिरता को धारण कर लिया हो ॥ ६ ॥

उलूकवदना काकग्रीवा मार्जारलोचना ।
निर्मिता प्राणिनामङ्गैरिव नित्यविरोधिनाम् ॥ ७ ॥

उसका मुख उल्लू के मुख की भाँति था। उसकी ग्रीवा कौवे के गर्दन के समान थी। उसके नेत्र बिल्ली के लोचन की भाँति थे। इस प्रकार वह सर्वदा परस्पर स्वभावतः विरोध रखने वाले प्राणियों के अङ्गों से बनी हुई प्रतीत होती थी ॥ ७ ॥

वेश्याननैकपालिन्या यया रागमहाव्रते ।
कृता कामुकलोकस्य खट्वाङ्गशरणा तनुः ॥ ८ ॥

वेश्यागृह की अद्वितीय रक्षक जिस वृद्धा-स्त्री के द्वारा, रागरूपी महाव्रत में, कामुक व्यक्तियों के समुदाय एकमात्र खट्वा की शरण लेने के लिये बाध्य कर दिये गये अर्थात् उस स्त्री ने न जाने कितने कामुक व्यक्तियों को अतिसंभोग के माध्यम से चिररोगी बना कर खटिया की शरण लेने के लिये बाध्य कर दिया ॥ ८ ॥

सक्ताश्रुपातजननीं तां विलोक्य कलावती ।
अभिचारहुतस्याग्नेः कालीं धूमशिखामिव ॥ ९ ॥

ससंभ्रमोत्थिता तस्याः कृत्वा चरणवन्दनम्।
दत्त्वा निजासनं चक्रे स्तुतिं पूजापुरःसराम् ॥ १० ॥

अनुरक्त व्यक्तियों के अश्रुपात का कारण, अभिचार-हवनीयाग्नि की काली धूम शिखा की भाँति उस वृद्धा को देखकर 'कलावती' ने बड़े वेग और आदर से उठकर उनका चरण-वन्दन करके अपने आसन पर बैठाकर पूजापूर्वक अर्थात् सत्कारपूर्वक उनकी स्तुति (प्रशंसा) की ॥ ९-१० ॥

वेश्योपदेशविषये चतुराननत्वा-
न्मायाप्रपञ्चनिचयेन जनार्दनत्वात्।
रिक्तप्रसक्तकलहैरतिभैरवत्वात्-
सर्गस्थितिक्षयविधौ त्रिगुणा त्वमेव ॥ ११ ॥

कलावती ने उसकी स्तुति करते हुये कहा—वेश्याओं को उपदेश देने के विषय में चतुर्मुख भाव को धारण करने के कारण (अर्थात् वेश्याओं को उपदेश देने के लिये मानो तुम्हारे पास चार मुख हो जाते हैं); मायाप्रपञ्च (छल, कपट आदि) के समूह का अवलम्बन करने के कारण विष्णुभाव धारण करने से (अर्थात् तुम विष्णु की भाँति माया-प्रपञ्च का विस्तार करती हो); निर्धन होने पर भी वेश्याओं पर अनुरक्त होने वाले व्यक्तियों के साथ कलह करने के कारण भैरव का अवलम्बन करने से तुम ही सृष्टि, स्थिति एवं विनाश करने वाले तीनों-सत्त्व, रज एवं तम-गुण हो अथवा सृष्टि, स्थिति तथा विनाश करने वाली प्रकृति हो ॥ ११ ॥

उद्भिन्नयौवनमनोहररूपशोभा-
संभाविताभिनवभोगमनोभवानाम्।
एणीदृशां त्वदुपदेशविवर्जितानां
सम्भवन्ति नहि नाम समीहितार्थाः ॥ १२ ॥

हे मात ! तुम्हारे उपदेश से निर्मित, अङ्कुरायमाण नवीन यौवन के कारण मनोहारिणी स्वरूप की सुन्दरता से सम्पन्न हैं अभिनव समाग के लिये कामदेव जिनमें, ऐसी सुन्दरियां के मनोरथ की सिद्धि नहीं हो पाती ॥ १२ ॥

तस्माद्भवत्य परिकल्पितपुत्रिका मा

भक्तामनन्यशरणां शरणं प्रपन्नाम् ।

आत्मार्पणप्रणयिनां नवदर्शनेऽपि

आर्यैव पेशलधियः सदया भवन्ति ॥ १३ ॥

इस लिये अपनी भक्त, अन्य सहायता से रहित, शरण में गिरी हुई, मुझको तुम अपनी परिकल्पित पुत्री के रूप में स्वीकार कर लो। विशाल बुद्धिवाले व्यक्ति प्रथम साक्षात्कार में भी आत्मसमर्पण करने वाले व्यक्तियों के ऊपर प्रकृत्या दयालु हुआ करते ही हैं ॥ १३ ॥

इत्यर्थिता कलावत्याः प्रत्यासन्नसुखस्थितिः ।

मनुष्यामिषकङ्काली कङ्काली तामभाषत ॥ १४ ॥

कलावती के द्वारा इस प्रकार प्रार्थित, निकट भविष्य में सुख पूर्वक निवास करनेवाली, अस्थिपञ्जरमात्रावशिष्ट (मांस से हीन होने से केवली हड्डीदार शरीरवाली) कङ्काली ने उससे (कलावती से) कहा ॥ १४ ॥

मेनान्तहृदयस्नेहा निःशूलप्रसवोद्भवा ।

गर्भभारं विना पुत्रि त्वं सुताभिमता मम ॥ १५ ॥

हे पुत्रि ! मेरे हृदय के स्नेह को धारण करने वाली (पुत्री भी मेना के ही समान दयालु अथवा निर्दय होती है) अथवा मेरे लिये अपने हृदय में स्नेह करनेवाली (पुत्री माता के लिये अपने हृदय में स्नेह धारण करती है) बिना प्रसव की वेदना के भी समुत्पन्न कुक्षि में धारण करके बिना भी तुम मेरी पुत्री अभिमत हो अर्थात् मुझ से साक्षात् न उत्पन्न होने पर भी तुम मुझ पुत्री के रूप में मान्य हो ॥१५॥

कङ्केन जन्मसुहृदा त्वदर्थमहमर्थिता ।
स्यूतेयं मे विटच्छिन्ना नासा येन पुनः पुनः ॥ १६ ॥

यह कङ्क (नापित) मेरा जन्मजात मित्र है। विटों के द्वारा काटी गई मेरी नाक को बारम्बार जोड़नेवाले इस कङ्क ने तुम्हारी माता बनने के लिये मुझ से प्रार्थना की है ॥ १६ ॥

पात्रं मदुपदेशस्य त्वमेव त्रिदशोचिता ।
मद्भित्तिलिखितं चित्रं चित्रतामेति नेत्रयोः ॥ १७ ॥

त्रिदशोचिता—देवताओं के योग्य अर्थात् अतिसुन्दरी अथवा एक रात्रि में तीस व्यक्तियों के संभोगयोग्य यौवनशाली एकमात्र तुम ही मेरे उपदेश के लिये योग्य पात्र हो; क्योंकि सुन्दर-समतल एवं चिकनी-भित्तिपर लिखा गया ही चित्र नेत्रों के लिये आकर्षक होता है। मेरे समान गुरु की एकमात्र तुम्हीं योग्य शिष्या होने लायक हो ॥१७॥

श्रूयतां प्रथमं पुत्रि भूत्यै यत्कथयाम्यहम् ।
कलाकोषं तु कालेन नित्याभ्यासादवाप्स्यसि ॥ १८ ॥

हे पुत्रि ! मैं तुम्हारे कल्याण के लिये कह रही हूँ। सर्वप्रथम तुम इस बात को सुनो—'तुम प्रतिदिन अभ्यास करके ही समय आने पर हाव-भावादि कला कोष को प्राप्त करोगी ॥ १८ ॥

न कुलेन न शीलेन न रूपेण न विद्यया ।
जीविताभ्यधिकं बुद्धिलभ्यं धनमवाप्यते ॥ १९ ॥

प्राण से भी अधिक प्रिय धन न तो कुल के कारण प्राप्त होता है, न तो शील से प्राप्त होता है, न तो रूप और विद्या से ही। यह एकमात्र बुद्धि से ही प्राप्त किया जाता है ॥ १६ ॥

प्रायेण जगति प्रज्ञा नाना······स्ति कस्यचित् ।
इयतां जगतां वेद्मि पूर्णापूर्णायुभिर्जडैः ॥ २० ॥

इस संसार में प्रायः किसी की ही बुद्धि नाना विषयों के परिशीलन

में प्रवीण हुआ करती है। जडप्राय ऊर्णायु (मकड़ा) यही सोचता है कि "मैं इतनी सम्पूर्ण जगती को जानता हूँ" ॥ २० ॥

अज्ञातकालोचित-कर्मयोगा रोगा इवाहर्निशपच्यमानाः ।
जगत्त्रये देवमनुष्यनागाः प्रज्ञादरिद्राः खलु सर्व एव ॥ २१ ॥

इस त्रिजगती में प्रज्ञाविहीन देव, मनुष्य एव नाग आदि सभी अज्ञात अर्थात् अनुचित काल में कार्य करने के कारण दिन-रात रोग की भाँति पकते रहते हैं ॥ २१ ॥

ज्येष्ठेन तावत्परमेष्ठिनैव विचारशून्येन कृतं किमेतत् ।
यत्कामिनीपीनपयोधराणां विद्युद्विलोला किल यौवनश्रीः ॥२२॥

सबसे प्रथम तो यही है कि—प्राणियों में सर्वप्रथम उत्पन्न होने वाले, विचारशून्य विधाता के द्वारा ही यह क्या कर डाला गया, जो कि उन्होंने कामिनी जनों के स्थूल पयोधरों की यौवन-श्री को चिरस्थायी न बनाकर विद्युत् की भाँति चपल अर्थात् क्षणिक बनाया है ॥ २२ ॥

का नाम बुद्धिहीनस्य विधेरस्ति विदग्धता ।
कूष्माण्डानां न यश्चक्रे तैलमूर्णां च दन्तिनाम् ॥ २३ ॥

बुद्धिहीन विधाता की भला कौन सी विदग्धता मानी जाय, जब कि उन्होंने कूष्माण्ड (कोंहड़ा) में तेल नहीं बनाया और न तो हाथिओं के शरीर में रोम ही उत्पन्न किया ॥ २३ ॥

टिप्पणी—कोंहड़ा को छोड़कर अति लघु तिल में तेल उत्पन्न करना विशालकाय हाथी को छोड़कर लघुकाय भेंड़ के शरीर में रोम (ऊन) उत्पन्न करना विधाता की बुद्धि विहीनता है।

रत्नार्थिना जलनिधौ मधुसूदनेन
क्लेशः किलाद्रिवलनप्रभवोऽनुभूतः ।
किं सैव पूर्वमखिलार्थविलुण्ठनाय
कान्ताकृतिः कपटकाममयी न सृष्टा ॥ २४ ॥

रत्न को चाहने वाले मधुसूदन भगवान् विष्णु ने सागर में मथानी भूत मन्दराचल के घुमाने से निश्चय ही उत्पन्न क्लेश का अनुभव किय

अर्थात् कष्ट उठाया, किन्तु उन्होंने सागरमन्थन के पूर्व सम्पूर्ण अर्थों (प्रयोजनों एवं आनन्दों) के विलुण्ठन (लूटने) के लिये कपट एवं काममयी अथवा कपट-काम से परिव्याप्त कान्ता की आकृति का ही निर्माण क्यों नहीं किया ? जिससे सारा आनन्द अनायास ही प्राप्त किया जा सकता था ॥ २४ ॥

निद्रा महीभारपरिग्रहश्च श्रीसंश्रयत्वं परयाचनं च ।
अत्युन्नतत्वं गुणहीनता च किं युक्तमेतत्पुरुषोत्तमस्य ॥ २५ ॥

शयन (आषाढ़ शुक्ल एकादशी से कार्तिक शुक्ल एकादशीपर्यन्त लगातार चार महीने); पृथ्वी के भार का ग्रहण; लक्ष्मी का आश्रयण, दूसरे से याचना करना (वामनरूपधारी विष्णु ने बलि से माँगा था) अत्यधिक उन्नतता (विराट्रूप से महानता) अथवा अत्यधिक श्रेष्ठता; गुणहीनता, क्या ये बातें पुरुषोत्तम भगवान् के योग्य हैं ? ॥२५॥

कृशः शशी गणा नग्ना भार्या चार्धहारिणी ।
संभोगेनपतिप्रीतिर्न विद्मः कोपयुज्यते ॥ २६ ॥

भगवान् शङ्कर के मस्तक पर वर्तमान चन्द्रमा कृश है, उनके गण नग्न रहते हैं और भार्या भी अर्द्धाङ्गहारिणी है। ऐसी अवस्था में नहीं जानते कि कुबेर के साथ उनकी मैत्री का क्या उपयोग है? ॥२६॥

भस्माङ्गः प्रकटं बिभर्ति ललनां योऽङ्गे स किं युक्तकृ-
न्निःसङ्गः सततं गणेषु रमते यः किं स सत्यव्रतः ।
यः सक्तः परमेश्वरोऽपि वृषभृद्गोषु स किं नीतिमान्-
गोप्यां यः कुटिलां कलां स्फुटतया धत्ते स किं धीधनः ॥२७॥

अपने अङ्गों में भस्म पोतने वाले, धर्मधारी अथवा वाहनरूप वृष को स्वीकार करनेवाले भगवान् परमेश्वर स्पष्ट रूप से जो अपने अङ्ग (अर्द्धाङ्ग) में ललना का धारण कर लें, क्या उनका यह कार्य युक्ति-युक्त है अर्थात् क्या उनका यह कार्य समुचित है ? निःसङ्ग हो करके भी सर्वदा गणों में रमण करनेवाले शिव की सत्यव्रतता क्या

निर्गोहित हो रही है ? ऐसी अवस्था में क्या वे वस्तुतः सत्यव्रत कहे जाने के योग्य हैं ? निःसङ्ग होकर भी अपने वर्ग में आसक्त रहनेवाले भगवान् शंकर क्या नीतिमान् कहे जा सकते हैं ? जो भगवान् श्रीकृष्ण गोपी के साथ प्रच्छन्नरूप से कुटिल कला को धारण करते हैं, क्या वे यथार्थत बुद्धि के धनी माने जा सकते हैं ॥ २७ ॥

किं कामिनीप्रणयिना दिननायकेन
मंशातितं भ्रमकृता कृतिना स्वतेजः ।
अर्थेन किं न विहिताभिमुखा मृगाक्षी
वित्तेन तीक्ष्णतरमप्यबला सहेत ॥ २८ ॥

स्त्रियों के प्रणयी, कृतार्थ, सर्वदा भ्रमणशील सूर्य के द्वारा अपना तेज क्यों समाप्त कर दिया जाता है ? क्या धन के द्वारा मृगनयनी स्त्री अनुकूल नहीं की जाती ? धन एक ऐसी वस्तु है जिससे स्त्रियाँ तीक्ष्ण से भी तीक्ष्ण व्यक्ति अथवा तेज को सहन कर लेती हैं ॥ २८ ॥

चन्द्रस्येश्वरसेवया कृशतनोः क्षैण्यं न निर्मूलितं
मानी मूर्ध्नि जडः स्थितः कथमिव प्राप्नोति संपूर्णताम् ।
वृद्ध्यर्थी यदि किं करोति चरणोपान्ते न तस्यास्पदं
हन्त्येव स्वममीहितं गुणमदादुच्चैः स्थितः सेवकः ॥२९॥

ईश्वर शिव की सेवा करने पर भी कृशशरीर चन्द्रमा (कलात्मक चन्द्रमा) की क्षीणता विनष्ट नहीं हुई । स्वाभिमानी, मूर्ख चन्द्र भला शिव के मस्तक पर स्थित होकर कैसे पूर्णता को प्राप्त कर सकता है ? अपनी वृद्धि को चाहनेवाला सेवक यदि स्वामी के चरण के समीप अपनी स्थिति नहीं बनाता है और अपने गुणों के मद में ऊँचे ही स्थित रहता है तो वह अपने ही कल्याण का विनाश करता है ॥ २९ ॥

यानः प्रतारयितुमीश्वरमङ्गनायां
मारः पुरा किमिति कार्मुकबाणपाणिः ।

नाग्रे ततान वनितागुणवर्णनानां
यत्मो···तेन नियतं विननाश मूर्खः ॥ ३० ॥

पूर्वकाल में ईश्वर भगवान् शङ्कर को स्त्री में आकृष्ट कर अनुरक्त करने के लिये कामदेव ने उनके सामने वनिताओं के गुणों के वर्णनों का सौख्य न फैला कर अर्थात् कामिनियों के सौन्दर्यादि की प्रशंसा न करके अपने हाथों में धनुष एवं बाण को धारण कर उनके समक्ष क्यों गमन किया? निश्चय ही वह अपने इस अविचारित कार्य के कारण ही विनष्ट हो गया ॥ ३० ॥

रक्तोऽप्यशोकविटपी परपुष्टबन्धोः
प्राप्नोति यस्य विभवे चरणप्रहारम्।
तस्मै समृद्धिनचिर्वैर्मधुपैर्निपत्य
धृतैर्निपीतमधवे मधवे नमोऽस्तु ॥ ३१ ॥

लाल (अनुरक्त) भी अशोक वृक्ष जिस दूसरे से पले हुए कोकिल के मित्र वसन्त का वैभव आने पर चरणों का प्रहार सहा करता है (सुन्दरियों के पादाघात से अशोक पुष्पित होता है—कवि समय प्रसिद्धि) तथा सम्पत्ति के समय निरस्कृत हो हो कर भी घुनकर मजा लूटनेवाले मधुपों (भौंरों, पीनेवालों) से जिसका मधु (पराग, सुरा) पिया जा चुका है उस वसन्त को नमस्कार! ॥ ३१ ॥

स्वाम्यं सर्वजगत्सु दिव्यमुनयस्तत्रोचिता मन्त्रिणो
राष्ट्रं स्वर्गमही महामणिगुरुः कोपः सुधाम्भोनिधिः।
दुर्गं मेरुगिरिः स्वसैन्यममराः श्रीमान्मुरारिः सुहृत्
सा बुद्धिर्विबुधाधिपस्य तु यया प्याप्तं भगाङ्कैर्वपुः ॥ ३२ ॥

देवराज इन्द्र का सब जगत् पर आधिपत्य है, उसमें देवमुनि उनके योग्य मन्त्री हैं। स्वर्ग की पृथिवी उनका राष्ट्र है। उनका कोप महामणि (चिन्तामणि) के कारण समृद्ध है। अमृत का उनका सागर है। मेरु पर्वत की चोटी ही उनका दुर्ग है। देवमण्डल ही

उनकी सेना है और श्रीमान् विष्णु ही साक्षात् उनके मित्र हैं। किन्तु उनकी ही यह बुद्धि है जिसके कारण उनका शरीर भग के चिह्नों से परिव्याप्त हो गया है ॥ ३२ ॥

लुब्धस्याफलकालकूटकटुकक्रोधस्य निस्तेजसः
मर्त्याक्रान्तिनिपीडितस्य जलधेर्दातुं प्रवृत्तस्य ते ।
संख्यातीतसमस्तरत्नसवेर्मूर्खाः किमेतावता
मोहादेकगजाश्वपादपसुरामात्रेण तुष्टाः सुराः ॥ ३३ ॥

लोभी (क्योंकि सब कुछ प्राप्त कर लेने पर भी समुद्र सन्तुष्ट नहीं होता), मन्थन के परिणामस्वरूप निर्गत कालकूटरूप कोपवाले, निस्तेज, सब देवताओं एवं दैत्यों की आक्रान्ति से नितरां पीड़ित अतः देने में तत्पर, असंख्य समस्त रत्नों के निवासभूत सागर के ऊपर मूर्ख देवलोग एक गज (ऐरावत), एक अश्व (उच्चैःश्रवा); एक वृक्ष (कल्पतरु) एवं सुरामात्र से ही—अतिस्वल्प वस्तुओं से ही—मोहवश-अज्ञानवश-क्यों तुष्ट हो गये ? अर्थात् ये वस्तुयें तो अतिस्वल्प थीं उन्हें और कुछ निकालना चाहिये था। इतने मात्र से सन्तुष्ट होना उनकी मूर्खता की निशानी है ॥ ३३ ॥

रामेण हेमहरिणाहरणोत्सुकेन
कूटाक्षकेलिमरणेन युधिष्ठिरेण ।
ईर्ष्यारुषा द्विजरुषा जनमेजयेन
दत्तः परं मनुजवर्त्मनि मौग्ध्यसेतुः ॥ ३४ ॥

सुवर्ण के हरिण को पकड़ने के लिये उत्कण्ठित रामचन्द्र के द्वारा; कपटयुत की क्रीडा-पद्धति का अनुसरण करने वाले धर्मराज युधिष्ठिर के द्वारा एवं ईर्ष्याजन्य क्रोध के कारण ब्राह्मण पर क्रुद्ध होनेवाले जनमेजय के द्वारा मानव-मार्ग में अर्थात् मानव के इतिहास में एकमात्र अज्ञानता का सेतु ही बनाया गया है अर्थात् इन लोगों के उक्त कार्य अज्ञानता से पूर्ण ही रहे ॥ ३४ ॥

नागैस्तार्क्ष्यसमर्पितं तदमृतं यत्नश्रमैर्दुर्लभं
नो पीतं न विलोकितं न पिहितं मोहात्परं हारितम् ।
तस्मान्नास्ति जगत्त्रयेऽपि विमलः प्रज्ञाकणः कस्यचित्-
सर्वः प्राक्तनजन्मकर्मवशादर्थोद्यमे धावति ॥ ३५ ॥

यत्न करने पर भी दुष्प्राप्य अमृत को नागों ने जो कि तार्क्ष्य को समर्पित कर दिया। उसे इन लोगों ने न तो पिया, न देखा और न ढक कर रक्खा ही। वे उसे अज्ञानतावश खो बैठे। इससे यही निश्चित होता है कि इस समग्र त्रिजगती में किसी के पास भी विमल प्रज्ञा का एक भी कण नहीं है। सभी अपने पूर्वजन्म के जन्य-कर्मवश धनसिद्धि के कार्यों में दौड़ते हैं॥ ३५॥

एवं जडेषु लोकेषु स्त्रीषु मुग्धासु का कथा ।
बुद्धिहीनप्रमादेन जीवामः केवलं वयम् ॥ ३६ ॥

इस प्रकार सम्पूर्ण लोक के ही जड अर्थात् प्रज्ञाविहीन सिद्ध होने पर बेचारी भोली भाली स्त्रियों की क्या कथा की जाय? हम लोग केवल बुद्धिहीनों के प्रमाद से ही जीती हैं॥ ३६॥

मुग्धः प्रत्ययमायाति प्रत्यक्षेऽप्यन्यथा कृते ।
मायाप्रपञ्चसारश्च वेश्यानां विभवोद्भवः ॥ ३७ ॥

प्रत्यक्ष में अन्यथा करने पर भी भोले-भाले व्यक्ति विश्वास कर लेते हैं। माया एवं प्रपञ्च से ही वेश्याओं को सम्पत्ति की प्राप्ति होती है॥३७॥

पुरा मठरकाख्यस्य मया पाणौ द्विजन्मनः ।
ताम्बूलकल्ककलितं ष्ठीवितं हास्यलीलया ॥ ३८ ॥

बहुत पहले की बात है—'मठरक' नामक ब्राह्मण के हाथ पर मैंने हँसी-मजाक में चर्वित किये गये पान के लबाब को थूँक दिया था॥३८॥

मुग्धस्ततोऽवमानेन सोऽभिजातोऽभिमानवान् ।
तत्संसदि तद्धास्ये ओष्ठादात्मवचोधृतः ॥ ३९ ॥

तदनन्तर सत्कुलीन अतः अपने कुल आदि का अभिमान करने वाला भेला-माला वह ब्राह्मण इस अपमान से क्रोध के मारे लाल होकर जनसमूह के मध्य में ही आत्महत्या करने के लिये तैयार हो गया ॥ ३९ ॥

नार्यो धातुप्रकोपेन मिथ्या पश्यसि विभ्रमम् ।
न मया ष्ठीवितं किंचिद्भित्तौ पाणिः प्रमृज्यताम् ॥ ४० ॥

उस ब्राह्मण की इस अवस्था को देखकर मैंने उसका प्रमार्जन करते हुये कहा—हे सज्जन ! आप धातुजन्य विकृति के कारण व्यर्थ में ही गलत सोच रहे हैं अथवा गलत देख रहे हैं। मैंने तो कुछ थूँका ही नहीं है यदि आप के हाथ में कुछ लग ही गया हो तो भित्ति में आप अपना हाथ पोछलें ॥ ४० ॥

जात्या चर्ममयं चक्षुस्तस्मिन्कः प्रत्ययस्तव ।
मम सद्भावशीलायाः प्रमाणं वचनं न किम् ॥ ४१ ॥

अरे ! नेत्र तो जाति से ही चर्ममय हुआ करते हैं ऐसी अवस्था में आप का उनमें मता कैसे विश्वास हो रहा है ? आपके प्रति सद्भाव रखने की स्वभाववाली मेरे वचनों पर क्या आप का विश्वास नहीं है ॥ ४१ ॥

इत्युक्त्वा तीव्रशपथैर्गलहस्तादिनार्दनैः ।
स मया प्रकृतिं नीतस्तथेति प्रत्ययं ययौ ॥ ४२ ॥

ऐसा कह कर बडी बड़ी सौगन्धों से एवं गले में हाथ डाल कर थपथपाने से वह ब्राह्मण मेरे द्वारा शान्त किया गया और मेरे कथन के प्रति पूर्णरूप से विश्वस्त हो गया अर्थात् मैंने इसके हाथ पर नहीं थूँका है, इस बात को वह मान गया ॥ ४२ ॥

पदे पदे जगत्यस्मिन्निधिर्देवेन निर्मितः ।
विटचारणवेश्यानां बुद्धिहीनावलम्बनम् ॥ ४३ ॥

इस संसार में विधाता ने पग पग पर खजाने का निर्माण किया

है। (जिसकी जितनी बुद्धि हो, वह उतना भोग करे)। विट, चारण एवं वेश्याओं के अवलम्बन अर्थात् जीविका के साधन बुद्धिविहीन व्यक्ति ही हैं॥ ४३॥

नवयौवनकाले मे गृहं विप्रसुतः पुरा।
विवेश रात्रिभोगाय नाम्ना शंकरवाहनः॥ ४४॥

एक घटना मैं तुम्हें सुनाऊँ—पहले मेरी युवावस्था के उषाकाल के समय एक रात्रि में संभोग करने के लिये 'शङ्करवाहन' नाम वाले एक ब्राह्मण के लड़के ने मेरे घर में प्रवेश किया॥ ४४॥

शाण्ड्यादिवातिकठिनं पीनं प्रथमयौवनम्।
तं ब्रह्मचारिणं दृष्ट्वा सोद्वेगाहमचिन्तयम्॥ ४५॥
कठिनोऽयं निशा दीर्घा क्षपिता कामुकैरहम्।
तस्माद्भोगापहारोऽस्य मया कार्यः प्रयत्नतः॥ ४६॥

अत्यधिक कसे हुये हुये अतः कठोर शरीरवाले मोटे, नवयौवन-संपन्न उस ब्राह्मण ब्रह्मचारी को देखकर कामवेग के कारण उत्कण्ठित हुई मैंने सोचा—यह अत्यधिक प्रपुष्ट शरीरवाला है। रात्रि भी बड़ी है। मैं कामुकों के द्वारा संभोग करके खिन्न कर दी गई हूँ। अतः मुझे प्रयत्नपूर्वक इसके साथ भोग करने की बात टाल देनी चाहिये॥ ४५-४६॥

इति संचिन्त्य सुचिरं मया तैस्तैः कथाक्रमैः।
आसन्नशय्यावसरे यामः पूर्वोऽतिवाहितः॥ ४७॥

काफी देर तक ऐसा सोचकर मैंने, शय्यापर लेटने के अवसर में, विभिन्न कथाओं-वार्ताओं को कह कर रात्रि का प्रथम प्रहर व्यतीत कर दिया॥ ४७॥

आस्तां किमन्यद्वक्तव्यं श्रुतमेतदितस्ततः।
पतिता नेत्रयोर्निद्रेत्युवाच स पुनः पुनः॥ ४८॥

कथा को सुनते सुनते निद्रा से आक्रान्त वह युवक बारम्बार मुझ से कहता था—"बस, रहने दो अधिक कहना व्यर्थ है; मैंने इस प्रकार इधर उधर की काफी बातें सुनी हैं। मेरे नेत्रों में अब निद्रा समा चुकी है॥ ४८॥

कथावन्धेऽथ विरते तत्संगमनिवृत्तये।
शूलापदेशेन मया कृतः कृतकनिःस्वनः॥ ४९॥

इसके बाद कथाक्रम के समाप्त होने पर, उस युवक के साथ सभोग से छुटकारा पाने के लिये, मैंने शरीर-व्यथा के बहाने से बनावटी चीखना शुरू किया॥ ४६॥

सोऽथ मुग्धः प्रकृत्यैव सत्यप्रत्ययमोहितः।
चक्रे शूलोपशान्त्यै मे चक्रे सर्वाङ्गमर्दनम्॥ ५०॥

प्रकृति से ही भोला भाला, अतः मेरे बहाने को भी सत्य समझ कर अज्ञानी बना हुआ उस ब्राह्मणकुमार ने पीडा की निवृत्ति के लिये मेरे सम्पूर्ण अङ्गों का मर्दन (मालिश) किया॥ ५०॥

सादरं मृद्यमानेषु तेनाङ्गेषु शनैः शनैः।
ययौ सोपरोधेव क्षणदा क्षणवन्मम॥ ५१॥

उस युवक के द्वारा धीरे धीरे सुखपूर्वक आदर के साथ सम्पूर्ण अङ्गों के मलने पर अनुकूला की भाँति सुखदायिनी मेरी रात्रि क्षण के समान समाप्त हो गई॥ ५१॥

ततः प्रभाते तद्भोगवञ्चने चिन्तितं मया।
पशुबुद्धिर्वराकोऽयं मया शूलेन वाहितः॥ ५२॥

उसके बाद उसके साथ संभोग से वञ्चित अर्थात् सुरक्षित रह जाने पर प्रातःकाल मैंने सोचा—"पशु के समान निर्बुद्धि, बेचारा यह ब्राह्मण कुमार मेरे द्वारा शूल के बहाने संभोग से वञ्चित कर दिया गया॥५२॥

अनेन मेषमुग्धेन दत्ता भाटी चतुर्गुणा।
भोगानहारन्यायेन ध्रुवं तामनुयाचते॥ ५३॥

भेंड़ के समान मूर्ख इस युवक ने चागुना संभोग-शुल्क भी दिया है। संभोग से पूर्णतः अस्पृष्ट रहने पर निश्चय ही, यह न्यायवान अपने उस द्रव्य को माँगेगा ॥ ५३ ॥

तस्मादेष रतिस्पृष्टीकार्यस्तावद्यथा तथा ।
न्यायाय सुरतोच्छिष्टं कथं मम्रुपमर्पति ॥ ५४ ॥

इस लिये जिस किसी भाँति इसको रति का स्पर्शमात्र करा दिया जाय। सुरत से यत्किञ्चित् स्पृष्ट होने पर उच्छिष्ट यह युवक किस भाँति अपने शुल्क को माँगेगा ? अर्थात् तब यह द्रव्य वापस माँगने का अधिकारी नहीं रह जायगा ॥ ५४ ॥

इति ध्यात्वाहमारब्धरतिभोगा क्षपाक्षये ।
प्रीत्येवाकरवं तस्य पण्यानृण्याय चुम्बनम् ॥ ५५ ॥

ऐसा विचार कर मैंने रात्रि की परिसमाप्ति पर उस युवक के साथ सभोग करना प्रारम्भ किया। सभोग के प्रसग में मैंने उसके द्रव्य से उऋण होनेके लिये बनावटी प्रेम के साथ युवक का चुम्बन किया ॥५५॥

आरुढरतियन्त्रो मे शूलक्लेशकृपाकुलः ।
अलं मत्संगमेनेति सानुरोधोऽवदत्स माम् ॥ ५६ ॥

रतियन्त्र पर आरूढ अर्थात् भगारूढ; मेरे पीड़ाजन्य कष्ट के प्रति कृपालु उस युवक ने बड़ी ही सहानुभूति के साथ मुझ से कहा—"मेरे साथ सम्भोग बन्द कर दिया जाय अर्थात् आप को पीड़ा है अतः सम्भोग-क्रिया बन्द कर दी जाय" ॥ ५६ ॥

आवर्जनाय तस्याथ निर्व्याजार्जवचेतसः ।
मया मिथ्या प्रियालापैर्विहितो रञ्जनक्रमः ॥ ५७ ॥

निर्व्याज करुणचित्तवाले उस युवक को अत्यधिक सकरुण बना देने के लिये मैंने झूठे प्रिय लगनेवाले आलापोंके द्वारा उसका अनुरञ्जन किया ॥ ५७ ॥

अहो बतामृतस्पर्शस्तवाङ्गेषु विभाव्यते ।
अधुनैव मया दृष्टं यस्य प्रत्यक्षलक्षणम् ॥ ५८ ॥

अहो, तुम्हारे अङ्गों का स्पर्श तो आश्चर्यजनक ढंग से अमृतपूर्ण अर्थात् सुखद है । जिसका प्रत्यक्षलक्षण तो मैंने अभी देखा है ॥ ५८ ॥

गूढाङ्गेन त्वया स्पृष्टे ममास्मिन्रमणस्थले ।
न जाने क्व गतं शूलं मत्पुण्यैस्त्वमिहागतः ॥ ५९ ॥

इस रमण-स्थल में तुम्हारे प्रपुष्ट अङ्गों से आलिङ्गन करने पर मेरी (व्यथा न जाने कहाँ चली गई । मैं सोचती हूं कि तुम मेरे) पुण्यों के प्रताप से ही यहाँ आये हो ॥ ५९ ॥

इति श्रुत्वैव मद्वाक्यं सहसा साश्रुलोचनः ।
रत्यर्धविरतः शोकात्मोऽन्तः सानुशयः परम् ॥ ६० ॥
निजं वक्षो ललाटं च ताडयित्वा स पाणिना ।
हा कष्टं हा हतोऽस्मीति वदन्मामिदमब्रवीत् ॥ ६१ ॥

इस प्रकार के मेरे वचनों को सुनकर सहसा अपनी आँखों में अश्रु भर कर बीच में ही रति से विरत, शोक के कारण भीतर ही भीतर पश्चात्ताप से पूरित वह युवक अपने हाथों से वक्षःस्थल एवं ललाट को पीटकर 'हा बड़ा कष्ट है, मैं तो मर गया' ऐसा कहते हुये मुझ से यह कहने लगा ॥ ६०-६१ ॥

पूर्वं नैतन्मया ज्ञातं यन्मदङ्गसमागमः ।
शूलं हरति नारीणां मणिमन्त्रौषधादिवत् ॥ ६२ ॥

"मैंने पहले यह नहीं जाना था कि मेरे अङ्गों का संयोग, मणि, मन्त्र एवं औषध की भाँति, स्त्रियों की व्यथा का हरण करने वाला है ॥ ६२ ॥

मन्दपुण्यस्य जननी वात्सल्यजननी मम ।
सुचिरस्थायिना भद्रे शूलेन निधनं गता ॥ ६३ ॥

हे भद्रे! वात्सल्य की जननी अर्थात् वात्सल्यप्रदानकर्त्री मुझ जैसे मन्दभाग्य को उत्पन्न करने वाली मेरी माता बहुत दिन तक अङ्गों को पीडित करने वाले शूल (पीडा) के कारण मर गई ॥ ६३ ॥

विदितोऽयं प्रकारश्चेद्भविष्यद्संशयः ।
तज्जनन्या वियोगो मे नाभविष्यद्विचेतसः ॥ ६४ ॥

निश्चय ही यदि यह बात (मेरे अङ्गों के पीडा-हरण करने की बात) मुझे ज्ञात रही होती तो निष्करुण मेरा अपनी माता से वियोग न हुआ होता ॥ ६४ ॥

इत्युक्त्वा वञ्चितोऽस्मीति स रुदित्वा विनिर्ययौ ।
पुरुषाकारसंदिग्धनिर्विषाणवृषोपमः ॥ ६५ ॥

ऐसा कह कर 'मैं ठग गया' ऐसा कह कर रुदन करके पुरुष की आकृति में असंदिग्ध बिना सींग वाले बैल के तुल्य प्रतीत होनेवाला वह युवक मेरे घर से निकल कर चला गया ॥ ६५ ॥

नित्यं भोजनमैथुनप्रणयिनस्त्यक्तान्यकार्याः परं
लोकेऽस्मिन्गलगर्तमात्रसुखिनः सन्त्येव शून्याशयाः ।
ये मेषप्रतिमाः क्षयोद्यतमतेः सर्वस्वहर्तुः क्षणा-
दासस्येव विनिक्षिपन्ति नितरां निःशङ्कमङ्के शिरः ॥६६॥

भोजन तथा मैथुन में ही एकमात्र प्रेम करने वाले, अन्य कार्यों से रहित, केवल चर्वितचवणमात्र में ही सुखी, शून्यबुद्धिवाले मेष के समान बहुत से व्यक्ति इस संसार में हैं ऐसे लोग विनाश करने के लिये तत्पर, सब कुछ हरण करनेवाले, क्षण भर के लिये विश्वसनीय की भाँति प्रतीत होनेवाले व्यक्तियों की गोद में निःशङ्क हो करके अपना शिर रख देते हैं। उद्यत व्यक्ति पर विश्वास कर लेते हैं ॥ ६६ ॥

इत्यबुद्धिधनाधाननिधानैर्विविधोदयैः ।
कूटपर्ण्यरसामान्यैस्तारुण्यमतिवाह्यते ॥ ६७ ॥

इस प्रकार नासमझ व्यक्तियों के गृहीत धनरूप खजानावाले, विविध उपायों के अवलम्बन से उन्नति की ओर बढ़नेवाले, असामान्य अर्थात् परम निपुण एवं कपटप्रवीण वेश्याओं की तरुणता इसी प्रकार से व्यतीत की जाती है॥ ६७॥

अमत्येनैव जीवन्ति वेश्याः सत्यविवर्जिताः।
एताः सत्येन नश्यन्ति मद्येनेव कुलाङ्गनाः॥ ६८॥

सत्यमार्ग का सर्वदा एवं सर्वथा परित्याग करनेवाली वेश्यायें असत्य के अवलम्बन से ही जीवित रहती हैं। सत्यमार्ग का अवलम्बन करने पर ये उसी प्रकार से विनष्ट हो जाती हैं जैसे मद्य पान से कुलीन स्त्रियाँ॥ ६८॥

सत्यं विनाशाय पराङ्गनानामसत्यसारा गणिकागणश्रीः।
सत्येन वेश्या किल दृष्टसारा दरिद्रशालाइव कस्य सेव्याः॥६९॥

वेश्याओं के लिये सत्यता का अवलम्बन विनाशकारक सिद्ध होता है, क्योंकि गणिकासमुदाय की शोभा एवं सम्पत्ति तथा अभ्युन्नति असत्यसार हुआ करती है। सत्यता का अवलम्बन करने पर अपनी वास्तविकता के प्रदर्शन के कारण वेश्यायें भला, दरिद्रशाला की भाँति, किस के लिये सेव्य हो सकती हैं॥ ६९॥

दानेन नश्यति वणिङ्नश्यति सत्येन सर्वथा वेश्या।
नश्यति विनयेन गुरुर्नश्यति कृपया च कायस्थः॥ ७०॥

सम्पत्ति-दान से वणिक् नष्ट होता है। सत्य के अवलम्बन से वेश्यायें सर्वथा विनष्ट हुआ करती हैं। छात्रों के सामने अत्यधिक विनय से गुरु विनष्ट होता है और कृपा करने से कायस्थ विनाश को प्राप्त होता है॥ ७०॥

वेश्याजनस्य कितवस्येव वञ्चनमायया।
अहो वैदग्ध्यमित्युक्त्वा परोऽपि परितुष्यति॥ ७१॥

धूर्त व्यक्तियों की भाँति, वेश्या जनों की ठगने की माया को

"अहो, इस वेश्या की आश्चर्यजनक विदग्धता है" ऐसा कह कर अन्य लोग भी परितुष्टि को प्राप्त होते हैं। अर्थात् दुर्गुण रूप प्रवञ्चनकर्म भी वेश्या का समाश्रयण करने पर विदग्धतारूप सद्गुण के आकार को धारण कर लेता है॥ ७१॥

पुराहं पृथिवीमेतां भ्रान्त्वा जलधिमेखलाम्।
प्राप्ता वेश्यास्पदं लोभात्पुरं पाटलिपुत्रकम्॥ ७२॥

अपनी तरुणाई के मध्याह्न में मैंने सागररूप मेखलावाली अर्थात् सागरपर्यन्त समूची पृथिवी का भ्रमण करके लोभवश वेश्याओं के प्रधान आश्रयस्थल पाटलिपुत्र नगर को गई॥ ७२॥

कुट्टन्यस्तत्र सर्वज्ञा दृष्ट्वा मामल्पकौशलाम्।
जहसुः सस्वनं येन ह्रीताहं क्ष्मामिवाविशम्॥ ७३॥

वहाँ मायाशास्त्र की सर्वज्ञ कुट्टनियाँ कम प्रवीण-वेश्या-शास्त्र की अपण्डित-मुझ को देखकर मेरी खूब हँसी की जिससे लज्जित होकर मैं पृथिवी में धँस सी गई॥ ७३॥

ततस्तेनावमानेन गणेशायतनाग्रतः।
स्थिता कृतोपवासाहमहंकारविवर्जिता॥ ७४॥

उस अपमान के कारण अहंकारशून्य होकर मैंने गणेश जी के मन्दिर के सम्मुख स्थित हो उपवास किया॥ ७४॥

अथ स्वप्ने गणेनाहं पृष्टा शंकरसूनुना।
उपवासाः कियन्तस्ते प्राप्ता इति पुनः पुनः॥ ७५॥

जब रात्रि में उपवास की खिन्नता से मैं सो गई तब स्वप्न में भगवान् शङ्कर जी के पुत्र गणेश जी के द्वारा बारम्बार पूँछी गई कि 'तुम्हारे कितने उपवास हो चुके ?'॥ ७५॥

स मयाभिहितः कूटकृतप्राणान्तचेष्टया।
मासद्वयमतिक्रान्तं व्रतादनशनस्य मे॥ ७६॥

मैंने छलपूर्वक प्राणान्त की सी चेष्टा करते हुये भगवान् गणेश से कहा—"मुझे व्रत के कारण बिना कुछ खाये पिये दो महीने व्यतीत हो चुके हैं" ॥ ७६ ॥

तच्छ्रुत्वा स स्मितमुखः सर्वज्ञः प्राह मां गणः ।
अहो व्रतेऽपि स्वप्नेऽपि नासत्यादस्ति ते च्युतिः ॥ ७७ ॥

मेरी बात को सुनकर सर्वज्ञ भगवान् गणेश जी ने मुझ से कहा—"अहो, व्रत एवं स्वप्न में भी तुम्हारी असत्य से च्युति (रहितता) नहीं हुई" ॥ ७७ ॥

परितुष्टोऽस्मि ते भद्रे निश्चलासत्यनिश्चयात् ।
महामायामयकला लब्धभोगा भविष्यसि ॥ ७८ ॥

"हे भद्रे ! तुम्हारे असत्य सभाषण के दृढ निश्चय से मैं तुम पर प्रसन्न हूं। तुम्हें महामायामयी कला एवं भोग सर्वदा उपलब्ध रहेगें। अर्थात् तुम प्रपञ्च-विस्तार में भी अद्वितीय रहोगी और इसी कारण से भोग भी तुम्हें सवदा सुलभ होगा ॥ ७८ ॥

गणेशानुचरः पूर्वमिति मह्यं वरं ददौ ।
असत्येनैव वेश्यानां भवन्ति धनसंपदः ॥ ७९ ॥

भगवान् गणेश ने पहले मुझे ऐसा वर दिया था। इसीलिये मैं कहती हूं "असत्य के अवलम्बन से ही वेश्याओं को धन सम्पत्ति की प्राप्ति होती है ॥ ७६ ॥

धनप्रधानं जनजीवभूतं लोकेषु तत्रापि विशेषयोगात् ।
जनाभिसारप्रतिपत्तिभाजां महीभुजां वेशमृगीदृशां च ॥ ८० ॥

प्रजावर्ग में उनके कल्याणार्थ चारों ओर भ्रमण करने वाले राजाओं का एवं कामुक व्यक्तियों के साथ अभिसार को स्वीकार करनेवाली वेश्याओं का जीवन लोक में व्यक्तियों के मध्य; उसमें भी विशेष अवसर पर व्यक्तियों के संयोग से; धनप्रधान तथा जनों का जीवभूत अर्थात् आश्रयभूत हुआ करता है ॥ ८० ॥

धनेन लभ्यते प्रज्ञा प्रज्ञया लभ्यते धनम्।
प्रज्ञार्थौ जीवलोकेऽस्मिन्परस्परनिबन्धनौ ॥ ८१ ॥

धन से प्रज्ञा प्राप्त होती है और प्रज्ञा से धन लाभ हुआ करता है। इस जीवलोक मे प्रज्ञा एव अर्थ परस्पर एक दूसरे से आश्रित रहते हैं ॥ ८१ ॥

ईश्वरः स जगत्पूज्यः स वाग्मी चतुराननः।
यस्यास्ति द्रविणं लोके स एव पुरुषोत्तमः ॥ ८२ ॥

इस ससार में जिस व्यक्ति के पास धन है वही ईश्वर है अर्थात् सब कुछ करने में समर्थ है, वही ससार के प्राणियों मे पूज्य है, वही चतुर वक्ता है, वही चतुरानन अर्थात् ब्रह्मा के समान महान् पण्डित एव कर्त्ता है, वही पुरुषश्रेष्ठ है ॥ ८२ ॥

स एवाहृदयो राहुरलसः स शनैश्चरः।
वक्रः कुजन्मा सततं वित्तं यस्य न विद्यते ॥ ८३ ॥

जिसके पास धन नहीं है, वह हृदयहीन, राहु, आलसी, शनैश्चर के समान मन्दगति, वक्र एव कुत्सित जन्मवाला माना जाता है ॥ ८३ ॥

सुजातस्य प्रयातस्य माङ्गल्यस्पृहणीयताम्।
धनिकस्य विकारोऽपि क्षीबस्येव जनप्रियः ॥ ८४ ॥

धनिक अत एव माङ्गल्य की स्पृहणीयता को प्राप्त तथा सुन्दर जन्मवाले का विकार भी अर्थात् अनुचित कार्य भी, मत्त व्यक्ति के विकार की भाँति, जन प्रिय हुआ करता है ॥ ८४ ॥

टिप्पणी—ससार में किसी भी कार्य अथवा यात्रादि के पूर्व धनिक व्यक्ति का दर्शन माङ्गलिक एव निर्धन का अमाङ्गलिक माना जाता है।

धनिनश्चन्दनस्येव सच्छायस्य मनोमुषः।
निष्फलस्यापि लोकोऽयं संपर्कं बहु मन्यते ॥ ८५ ॥

सुन्दर छाया से सम्पन्न एव सुगन्धि आदि से मन को मुग्ध करने वाले फलरहित चन्दन के सपर्क की भाँति उपकार आदि फल से

रहित धनिक का संपर्क भी प्राणियों के द्वारा अभिनन्दित किया जाता है ॥ ८५ ॥

निस्त्रिंशा अपि सस्नेहा भवन्ति श्रीमतः परम् ।
स्वकेशा अपि निःस्वानां निःस्नेहा यान्ति रूक्षताम् ॥ ८६ ॥

श्रीमानों के खड्ग भी अत्यधिक सस्नेह (चिकने, तेज) हुआ करते हैं और धनविहीन व्यक्तियों के अपने केश भी तैल से विहीन होकर अर्थात् बिना तेल के रूक्ष हो जाते हैं ॥ ८६ ॥

सेव्यः कविबुधादीनां गुरुः शूरकलावताम् ।
गतिप्रदोऽर्थवानेव व्योममार्ग इवोन्नतः ॥ ८७ ॥

आकाशचारी की भाँति उन्नत-ऊपर उठा हुआ—धनवान् व्यक्ति ही कवियों एवं विद्वानों आदि का गति प्रदाता सुसेव्य आचार्य है और वही योद्धाओं तथा कलावेत्ताओं का शिक्षक-गुरु है ॥ ८७ ॥

विक्रीय स्वगुणं निःस्वं स्वयं मांसमिव द्विजः ।
सद्यः पतति निःसत्त्वः पतितः केन पूज्यते ॥ ८८ ॥

जिस प्रकार मांस-विक्रेता अत' पतित ब्राह्मण अपूज्य हो जाता है, उसी प्रकार निर्धन व्यक्ति भी स्वयं अपने गुणों को बेच कर शीघ्र ही पतित हो जाता है और पतित होने पर उसकी अपूज्यता तो सुनिश्चित ही है; क्योंकि पतित व्यक्ति इस संसार में किसी के द्वारा भी नहीं पूजे जाते ॥ ८८ ॥

गुणिनां चित्तवैकल्याद्गुणा निर्गुणवाञ्छया ।
हृदयेष्वेव सीदन्ति विधवानामिव स्तनाः ॥ ८९ ॥

चित्त की विकलता से (निर्धनता की अवस्था में व्यक्तियों के चित्त विकल हो जाया करते हैं) गुणी व्यक्तियों के गुण, निर्गुण की इच्छा से, हृदय में ही उसी प्रकार से अवसादपूर्वक नष्ट हो जाते हैं जैसे विधवा स्त्रियों के स्तन ॥ ८९ ॥

विद्वद्भिः परिवारिताः सगुणतामायान्ति वित्तैर्नराः
शूरत्वं सुभटैः कुलीनतरैः प्रख्यातसद्वंशताम् ।
तस्माद्वित्तसमाश्रये गुणगणे वित्ते च नान्याश्रये
नित्यं वित्तमनन्यचित्तनिरताः संपत्तिमित्थं नुमः ॥ ९० ॥

वित्त के कारण विद्वानों से घिरे रहने वाले धनी व्यक्ति सगुणता-गुणवत्ता-को प्राप्त होते हैं। सुभटों से घिरे रह कर शूरता को प्राप्त होते हैं। सद्वंश में समुत्पन्न व्यक्तियों से घिरे रह कर प्रसिद्ध एवं पवित्र वंशभाव को प्राप्त होते हैं अर्थात् सुकुलीन तथा पवित्र वंश में उत्पन्न कहे जाते हैं। अतः गुणगणों के वित्त में ही निवास करने के कारण एवं वित्त के अन्य किसी भी वस्तु का आश्रय न करने से वित्त में ही एकमात्र चित्त को निविष्ट करने वाले हम लोग सम्पत्ति के लिये वित्त को ही मुहुर्मुहुः प्रणाम करते हैं ॥ ९० ॥

अम्लानमाल्याभरणाम्बरस्य वराङ्गनानन्दनमन्दिरस्य ।
नित्यप्रकाशोत्सवसेवितस्य स्वर्गस्य वित्तस्य च को विशेषः ॥ ९१ ॥

कभी भी नहीं मलिन होता है माल्य, आभूषण एवं वस्त्र जिसका (जिससे), वराङ्गनाओं के नृत्य गीत तथा विलासादि से आनन्दप्रद है गृह जिसका (जिससे) एवं नित्य चलने वाले प्रकाशपूर्ण उत्सवों से सेवित स्वर्ग एवं वित्त में क्या अन्तर है? अर्थात् कुछ भी नहीं अन्तर है। जहाँ वित्त है वहीं स्वर्ग है ॥ ९१ ॥

अशेषदोषापगमप्रकाशमित्रागमोत्साहमहोत्सवार्हम् ।
विकासशोभां जनयत्यजस्रं धनं जनानां दिनमम्बुजानाम् ॥ ९२ ॥

सम्पूर्ण दोष दुर्गुण पक्षा० में दोषा रात्रि के समाप्त होने से प्रकाशित मित्र (सुहृद्, पक्षा० में सूर्य) के आगमन रूप महोत्सव से अर्हणीय धन एवं दिन क्रमशः व्यक्तियों तथा कमलों की विकासशोभा को नित्य ही उत्पन्न करते हैं ॥ ९२ ॥

वित्तेनाभिजनी गुणी परिजनी मानी प्रमाणीकृतः
मद्भिर्जन्तुरुपैति साधुपदवीं किं वा बहु ब्रूमहे ।
वित्तेन व्रततीर्थमार्थमरणक्लेशाभियोगं विना
तीर्यन्ते तनपातकव्यतिकरास्ते ब्रह्महत्यादयः ॥ ९३ ॥

वित्त से ही, व्रत एवं तीर्थ मे सप्रयोजन गमन मे जो क्लेश है उनको उठाने बिना ही ब्रह्महत्यादि रूप बड़े बड़े पातकों के समूह पार कर लिये जाते हैं ॥ ९३ ॥

श्रूयतां यत्पुरा वृत्तं वाराणस्यां स्वयं मया ।
श्रुतं विश्रुतसत्त्वस्य चरितं गृहमेधिनः ॥ ९४ ॥

बहुत पहले वाराणसी में जो एक घटना घटी उसे सुनो—स्वयं मैंने प्रख्यात चरित्रवाले एक स्वधर्मनिष्ठ गृहस्थ का चरित सुन रक्खा था ॥ ९४ ॥

तत्राभवद्भूरपतिर्वर्गातलधनाधिपः ।
द्विजन्मा श्रीधरो नाम महाब्धिरिव रत्नवान् ॥ ९५ ॥

वहाँ पृथिवी पर के धनियों का मुकुटमणि रत्नों से परिपूर्ण सागर की भाँति श्रीधर नाम का एक ब्राह्मण गृहस्थ रहता था ॥ ९५ ॥

अर्थिकल्पतरोस्तस्य राजार्हवरभोजनैः ।
अवारितमभूद् गेहे भोज्यमन्नं सदार्थिनाम् ॥ ९६ ॥

याचकों के लिये कल्पतरु उस ब्राह्मण के घर में याचकों के लिये बहुमूल्य श्रेष्ठ भोजनों से सम्पन्न भोजनसत्र सर्वदा अविराम गति से चला करता था ॥ ९६ ॥

तस्य विप्रसहस्रेषु भुञ्जानेषु सदा गृहे ।
लोके युधिष्ठिरकथा श्लथादरकथा यया ॥ ९७ ॥

उनके घर में सर्वदा सहस्रों ब्राह्मणों के भोजन करते रहने पर लोक में प्रसृत उसकी कीर्तिकथा के सामने युधिष्ठिर की कीर्तिकथा धूमिल पड़ गई ॥ ९७ ॥

ततः कदाचिदाचारनिधेस्तस्य समाययौ ।
नियतात्मा यतिर्गेहं ज्ञानात्मा नाम दिव्यधीः ॥ ९८ ॥

कुछ समय के अनन्तर आचार के सागर उस विप्र के घर पर अपनी इन्द्रियों को वश में करने वाले, विलक्षण प्रतिभाशाली 'ज्ञानात्मा' नाम के एक यति आये ॥ ९८ ॥

स पूज्यः पूजितस्तेन श्रद्धयोपनिमन्त्रितः ।
पाकशालां ययौ द्रष्टुं भक्ष्यराशिशतान्विताम् ॥ ९९ ॥

सादर उपनिमन्त्रित धन्य वह महात्मा उस ब्राह्मण के द्वारा पूजित सत्कृत होकर भोजन-पकवानों की शत-शत राशियों से समलङ्कृत उसकी पाकशाला को देखने के लिये गये ॥ ९९ ॥

तत्रापश्यत्स सर्वान्नव्यञ्जनादिगणोपरि ।
सितयज्ञोपवीताङ्कं लम्बमानतनुं शवम् ॥ १०० ॥

रसोई घर में उस यति ने सम्पूर्ण अन्न तथा व्यञ्जन आदि समूह के ऊपर स्वच्छ धवल यज्ञोपवीतधारी, लटक रहा है शरीर जिसका ऐसे शव को देखा ॥ १०० ॥

स्रवद्भिस्तस्य गात्रेभ्यः सूक्ष्मशोणितबिन्दुभिः ।
अन्नं सर्वजनादृष्टैः सिच्यमानं ददर्श सः ॥ १०१ ॥

उन्होंने वहाँ देखा कि किसी के द्वारा भी न देखे गये अर्थात् सभी लोगों से अज्ञात, उस शव के शरीर से धीरे धीरे बहनेवाले, छोटे छोटे रक्त के कणों से वहाँ का सम्पूर्ण अन्न सिक्त हो रहा है ॥ १०१ ॥

दृष्ट्वा तदतिबीभत्सं घृणासंकुचिताशयः ।
संस्पृष्टकर्णः स ययौ तत्तूर्णमलक्षितः ॥ १०२ ॥

अति बीभत्स उस कार्य को देख कर घृणा के कारण संकुचित मनवाले वे यति अपने कानों को छूते हुये शीघ्र ही अलक्षित हो गये अर्थात् वहाँ से चले गये ॥ १०२ ॥

अथ संवत्सरे याते पुनरभ्येत्य कौतुकात् ।
सोऽपश्यन्मांसहीनं तत्स्नायुनद्धं कलेवरम् ॥ १०३ ॥

इसके बाद एक वर्ष के बीतने पर कुतूहलवश पुनः आकर उन यति ने मांसविहीन, स्नायुओं से लिपटे हुये उस कलेवर को देखा ॥ १०३ ॥

शिरामुखशतैस्तस्य क्षिप्तस्नेहकणांश्चितम् ।
स दृष्ट्वा भोज्यमगमज्जुगुप्सामीलितेक्षणः ॥ १०४ ॥

उस कलेवर की शिराओं के सैकड़ों मुखमार्गों से प्रवहमान आर्द्र स्नेहकणों से भोज्य पदार्थों को परिव्याप्त देखकर जुगुप्सा के कारण अपनी आँखें बन्द करके वे महात्मा वहाँ से चले गये ॥ १०४ ॥

वर्षेण पुनरायातः सोऽस्थिशेषशवस्रुतैः ।
अन्नव्यञ्जनमद्राक्षीद्व्याप्तं द्वित्रिवसाकणैः ॥ १०५ ॥

एक वर्ष के बीतने पर पुनः आकर उन महात्मा ने अस्थिमात्रावशिष्ट शव से चूने वाले दो तीन वसा कणों से व्याप्त अन्न तथा व्यञ्जन को देखा ॥ १०५ ॥

कौतुकाद्वत्सरे याते सोऽपश्यत्पुनरागतः ।
कपालशेषस्खलनादन्नोपरि रजश्च्युतम् ॥ १०६ ॥

पुनः एक वर्ष के व्यतीत होने पर कौतुकवश आकर उन्होंने देखा कि कपालमात्रावशिष्ट कलेवर से अन्न के ऊपर रज (चूना कण) गिर रहा है ॥ १०६ ॥

षड्भिर्मासैरथायातः शुद्धं शवविवर्जितम् ।
रम्यं महानसं दृष्ट्वा पुरोहितमुवाच सः ॥ १०७ ॥

इसके बाद छः महीने के अनन्तर पुनः आकर उन्होंने देखा कि रसोई घर शव से विवर्जित अतः रम्य है। तब उन्होंने वहाँ के पुरोहित से कहा ॥ १०७ ॥

अहो गृहपतेरस्य महामतेण पातकम् ।
क्षीणमल्पेन कालेन लीढं याचककोटिभिः ॥ १०८ ॥

आश्चर्य की बात है कि महासत्र के माध्यम से कोटि याचकों के द्वारा चाट लिया गया इस गृहपति ब्राह्मण का पातक अल्प काल में ही क्षीण हो गया ॥ १०८ ॥

बभूव पूर्वपुरुषोपार्जितान्य गृहाश्रया ।
ब्रह्महत्या शतवती सात्र दानात्क्षयं गता ॥ १०९ ॥

इस ब्राह्मण के पूर्वजों के द्वारा उपार्जित और सैकड़ों वर्ष से इसी के घर में रहनेवाली ब्रह्महत्या सत्र-दान के द्वारा क्षय को प्राप्त हो गई ॥ १०९ ॥

यैस्तस्य भवने भुक्तं तैस्तत्पापं समाहृतम् ।
पापमन्नाश्रयं पुंसां भोक्तारमुपसर्पति ॥ ११० ॥

जिन लोगों ने इस ब्राह्मण के घर में भोजन किया है, उन लोगों ने इस ब्रह्महत्यारूपी पातक का समाहरण किया है। क्योंकि व्यक्तियों का अन्नाश्रित-अन्न में रहने वाला—पाप भोक्ता के पास चला जाता है ॥ ११० ॥

ब्रह्महत्या भवस्यापि या बभूव भयप्रदा ।
धनेन क्षपिता सेयमहोधनमहोधनम् ॥ १११ ॥

जो ब्रह्महत्या भगवान् शङ्करावतार भैरव के लिये भी भयप्रद हुई थी वही धन के द्वारा यहाँ विनष्ट कर दी गई, एतदर्थ धन की महिमा आश्चर्यजनक है ॥ १११ ॥

टिप्पणी—एक बार भगवान् शङ्कर जी की आज्ञा से कालभैरव ने ब्रह्मा के असत्यभाषी पञ्चम मुख को अङ्गुलि के नख से काट दिया था। इसके परिणाम स्वरूप ब्रह्महत्या ने उनका पीछा किया। भगवान् शङ्कर जी के निर्देशानुसार जब भैरव जी काशीपुरी में आये तब एकाएक उनके हाथ से संलग्न ब्रह्मा का कपाल गिर पड़ा और ब्रह्महत्या भी हा! हा! करती हुई पाताल को चली गई। जहाँ पर ब्रह्मा का कपाल गिरा था उस स्थान को कपालमोचन कहते हैं। कपालमोचन तीर्थ के रूप में प्रसिद्ध है।

इत्युक्त्वा स शिलापट्टे लिखित्वा श्लोकमादरात् ।
पुरोहितेनार्च्यमानः प्रययौ ज्ञानलोचनः ॥ ११२ ॥

ऐसा कह कर और शिलापट्ट पर ऊपर वाला श्लोक आदरपूर्वक लिखकर पुरोहित जी के द्वारा पूजित सम्मान होकर 'ज्ञानलोचन' (ज्ञानात्मा) नामक उक्त यति वहाँ से चले गये ॥ ११२ ॥

वाच्यमानः स विद्वद्भिः कस्तगद्गुनवादिभिः (?) ।
श्लोकार्थगौरवरसात्मया तत्र स्वयं श्रुतः ॥ ११३ ॥

धन की महिमा को अद्भुत बतलाने वाले विद्वानों के द्वारा कहा जाता हुआ वह श्लोक धन के गौरवपूर्ण रस के कारण अथवा अर्थ (श्लोकार्थ) के गौरवपूर्ण रस के कारण वहाँ मेरे द्वारा स्वयं सुना गया ॥ ११३ ॥

शमयति चित्तं पापं शापं विलुम्पति दुःमहं
कलयति कुलं कल्याणानां कलङ्करुणोज्झितम् ।
धनमकलुषं तीर्थं पुंसां वदेत महत्तपः
सुकृतनिधये श्रद्धाधाम्ने धनाय नमो नमः ॥ ११४ ॥

धन बड़े हुए सैकड़ों पापों का शमन करता है। दुःसह शाप को विनष्ट करता है। कुल को निष्कलंक एवं कल्याणों का भाजन और तीर्थ को पापरहित अर्थात् निर्मल बनाता है। यह धन ही पुरुषों के लिये बहुत बड़ा तप है। पुण्य के आकर तथा श्रद्धा के धाम धन को शत शत नमस्कार है ॥ ११४ ॥

एतदाकर्ण्य युक्तार्थमर्थस्तुतिमयं मया ।
नीतं [द]शापदेशानां समये सारतन्त्रताम् ॥ ११५ ॥

धन की प्रशंसा से परिपूर्ण इस यथार्थ बात को सुनकर मैंने अवस्था-परिवर्तन के समय इसको मूलमन्त्र अथवा सारभूत प्रयोजन-साधक उपकरण के रूप में ग्रहण किया है ॥ ११५ ॥

कुरु चित्तार्जनं तूर्णं भवति योषिता ।
न यौवनमहायोऽयं तनये कायविक्रमः ॥ ११६ ॥

तुम झटिति लोगों के चित्त को आकृष्ट करो। वेश्याओं का यौवनपूर्ण शरीर ही द्रव्य का साधन होता है। हे पुत्रि! यौवन से लबालब हुए शरीर का उल्लंघन तिरस्कार-ठीक नहीं ॥ ११६ ॥

तनुवल्लीवसन्तश्रीर्वदनेन्दुशरन्निशा ।
पयोधरोद्गमप्रावृट् चपला यौवनद्युतिः ॥ ११७ ॥

युवती वेश्याओं की शरीरलतिका वसन्त का सुषमा है। मुखचन्द्र चन्द्रिका धवला शरद की शर्वरी है। पयोधरों की उद्भिन्नता वर्षा है और यौवन की छटा मानो चचला विद्युत् है ॥ ११७ ॥

तारुण्ये तरले सुभ्रूभ्रूभङ्गभङ्गविभ्रमे ।
स्त्रीणां पीनस्तनाभोगा भोगा द्वित्रिदिनात्मकाः ॥ ११८ ॥

हे सुलोचनी! चचल भृकुटियों की वक्रता के सौन्दर्य से सम्बलित चपल तरुणाई के आने पर स्त्रियों के विशाल स्तनकलशों के परिसर-प्रदेश बहुत कम दिनों तक ही आनन्ददायक समागम के आलम्बन हुआ करते हैं ॥ ११८ ॥

अयं मुखसरोरुहभ्रमरविभ्रमः सुभ्रुवां
कुचस्थलकुरङ्गकः पृथुनितम्बलीलाशिखी ।
न यौवनमदोदयश्चरति चारुकान्तिच्छटा-
कुलद्विवलिकूलिनीपुलिनराजहंसश्चिरम् ॥ ११९ ॥

मुख कमल पर भ्रमर की शोभा को धारण करने वाला अर्थात् मुख की श्रीवृद्धि का आधायक, कुचस्थल का कुरङ्ग, पृथु नितम्ब का नृत्य-मग्न मयूर और आकर्षक सौन्दर्य का छटामय स्वरूप त्रिवलीरूपी सरिता के तट पर निवास करने वाला राजहंस सुलोचनी तरुणियों का यौवनमदोदय चिरकाल तक विचरण नहीं करता अर्थात् तरुणियों के यौवनमद की पूर्णता चिरस्थायिनी नहीं हुआ करती ॥ ११९ ॥

आलानमुन्मूल्य सुखाभिधानं तारुण्यनागे गमनोद्यतेऽस्मिन् ।
पलायते कामिगणेऽङ्गनानां विमर्दभीत्येव कुचाः पतन्ति ॥१२०॥

आनन्द एवं उल्लास नामक आलान (गज के बाँधने का मजबूत निखातस्तम्भ) को उखाड़कर इस तारुण्य (यौवन) रूपी मत्त गज के गमनोद्यत होने पर कामिजन भाग खड़े होते हैं और कुचल जाने के भय से ही कामिनियों के स्तन गिर पड़ते हैं। अर्थात् यौवन के चले जाने पर कामी जन स्त्रियों का परित्याग कर देते हैं और उनका स्तन भी गिर जाता है ॥ १२० ॥

युवतितटिनीप्रावृट्कालः सपीनपयोधरः
कृतमदभरारम्भः कामी विलासशिखण्डिनाम् ।
मदनपवनालोल ·· ······· ··········· ··
··········· ············· ····· ··॥१२१॥

युवती सरिता है। उसका आकर्षक पीन पयोधर जल से पूर्ण अतः पीन मेघमाला से संवलित वर्षाकाल है। कामी ही मनोसुखकारी विलासपूर्ण मयूरों का किया गया मद से परिपूर्ण नृत्य है। युवतियों का स्थानभ्रष्ट वस्त्र मदनरूपी पवन से चंचल कामोद्दीपक लता है।················ ··॥ १२१ ॥

क्रीडावल्लीकुसुमसमये रागपद्माकरार्के
दर्पोद्याने वदनशशभृत्कौमुदीकार्तिकेऽस्मिन् ।
याते मुग्धद्रविणतुलया यौवने कामिमित्रे
पण्यस्त्रीणां व्रजति सहसा दुर्दशारोपतां श्रीः ॥ १२२ ॥

संभोग क्रीड़ारूपी लतिका के कुसुम-समय अर्थात् फूलने की ऋतु; अनुरागरूपी कमलाकर के सूर्य; दर्प के उद्यान अर्थात् उत्पादक; मुखरूपी चन्द्रमा की निर्मल चाँदनी के लिये कार्तिक महीना (कार्तिक के महीने में चन्द्रमा की चाँदनी अत्यधिक विशद एवं सुहावनी लगती है); कामिजनों के मित्र इस यौवन के, चञ्चल धन की भाँति अथवा

मुग्ध व्यक्ति के धन की भाँति, चले जाने पर वेश्याजनों की श्री सहसा दुर्दशा को प्राप्त हो जाती है ॥ १२२ ॥

न तु यौवनमात्रेण लभन्ते ललनाः श्रियम् ।
भोगार्हा वृद्धकरिणी तरुणी हरिणी वने ॥ १२३ ॥

ललनायें अपने वैभवमात्र से ही शोभा एवं लक्ष्मी को नहीं प्राप्त कर लेतीं। व्यवहार में देखा यह जाता है कि वन में वृद्धा हस्तिनी भोगार्ह होती है और तरुणी हिरनी बेचारी अकेली घूमती रहती है, अथवा सुन्दर सुन्दर वस्त्र (वन) आदि धारण करने पर वृद्धा हस्तिनी स्त्री (हस्तिनी स्त्रियों का एक भेद है) भोग के योग्य बन जाती है और वस्त्र आदि प्रसाधन के अभाव में मृगनयनी तरुणी भी स्त्री ग्राहकों के अभाव में भोग से वंचित रह जाती है ॥ १२३ ॥

रूपवत्यद्भुतास्मीति कान्ते त्याज्यस्त्वया मदः ।
वने मयूराः शुष्यन्ति बलिमश्नन्ति वायसाः ॥ १२४ ॥

हे सौन्दर्यशालिनी ! "मैं अद्भुत सौन्दर्यशालिनी हूँ" ऐसे मद को तुम छोड़ दो क्योंकि सौन्दर्य के धाम भोले भाले मयूर ग्राहकों के अभाव में वन में भूखों मरते हैं और कौए; जो कि छल-कपट के आकर होते हैं, आनन्दपूर्वक कूद कूद कर बलि (देव भाग) खाते हैं ॥ १२४ ॥

पूर्णा वक्रचला..................ते जनाः ।
क्षीणोऽपि वृद्धिमायाति कुटिलैककलः शशी ॥ १२५ ॥

पूर्ण, सौन्दर्यराशि, वक्रगामिनी पूर्णिमा की चन्द्रकला क्षीण हो जाती है और लोग उसका अभिनन्दन भी नहीं करते किन्तु द्वितीया का एककला (पक्षा० में एक कौशल) वाला अतः क्षीण भी कुटिल शशि वृद्धि को प्राप्त होता है ॥ १२५ ॥

भ्रूयुग्मं कुसुमेषुकार्मुकलतालावण्यलीलाहरं
वक्त्रं न्यक्कृतचन्द्रबिम्बमधरो बिम्बप्रभातस्करः ।

रूपं नेत्ररसायनं किमपरं सुश्रोणि तत्रापि ते
शिक्षाहीनतया मदद्विरदवत्प्राप्नोति नार्थक्रियाम् ॥१२६॥

हे सुन्दर कटितटवाली ! तुम्हारी टेढ़ी दोनों भ्रुकुटियाँ कामदेव की धनुर्लता की सौन्दर्यलीला का हरण करने वाले हैं। तुम्हारा आनन चन्द्रमण्डल का भी तिरस्कार करनेवाला है। तुम्हारे अधर—बिम्बा-फल की रक्तिम कान्ति को चुरा लेनेवाले—छीन लेने वाले—हैं। कहाँ तक कहा जाय तुम्हारा रूप नेत्रों के लिये रसायन—जीवन-दायिनी औषध है। ऐसी अवस्था में भी उपयुक्त शिक्षा के अभाव के कारण तुम्हारा रूप, मत्त हाथी की भाँति, अर्थक्रिया (प्रभूत सम्पत्ति पक्षा० में सार्थकता) को नहीं प्राप्त हो रहा है ॥ १२६ ॥

तवेयं यौवनतरोश्छाया विस्मयकारिणी ।
यया कामुकलोकस्य स्मरतापः प्रवर्तते ॥ १२७ ॥

तुम्हारे यौवनरूपी वृक्ष की यह छाया विस्मय को उत्पन्न करने वाली है; क्योंकि इस छाया के सेवन से शान्ति मिलने के बदले स्मरताप ही बढ़ता है ॥ १२७ ॥

रागसागरसंजातविद्रुमद्रुमपल्लवैः ।
तवाधरे स्मितरुचिः करोति कुसुमभ्रमम् ॥ १२८ ॥

तुम्हारे अधरोष्ठ पर छिटकी हुई मधुर मुस्कान की छटा अनुराग-रूपी सागर से उत्पन्न विद्रुमवृक्ष के पल्लवों से रक्तपुष्प की भ्रान्ति को उत्पन्न कर रही है ॥ १२८ ॥

भाति सचन्दनतिलकं कालागुरुकुटिलपल्लवाभरणम् ।
वदनं नन्दनमेतद्भ्रूलतिकालास्यललितं ते ॥ १२९ ॥

दर्शकों को आनन्दित करनेवाला, भ्रूलतिका के मधुर नृत्य से ललित, चन्दन एवं तिलक से अलङ्कृत तथा कृष्ण अगुरु से निर्मित कुटिल पल्लवरूप आभूषण को धारण करनेवाला तुम्हारा यह मुख अत्यधिक सुशोभित हो रहा है ॥ १२९ ॥

यातः सुन्दरि सुतरां स्तनभारपरिश्रमः शनकैः ।

प्रोषितशैशवशोकादिव मध्यः कृशतरत्वं ते ॥ १३० ॥

हे सुन्दरि ! तुम्हारा विपुल स्तनकलश के वहन करने के भार का परिश्रम धीरे धीरे बढ़ ही रहा है अर्थात् तुम्हारे स्तनकलश अभी मत्त हाथी के गण्डस्थल की भाँति वृद्धयुन्मुख ही हैं। तुम्हारी कटि मित्र शैशव के चले जाने के शोक से मानो अधिक कृशता को प्राप्त हो रही है अर्थात् अभी तुम्हारी कटि और अधिक पतली हो रही है ॥ १३० ॥

टिप्पणी—कटि का दुर्बलता से नितम्ब की गुरुता की ओर कवि का संकेत है। पीन पयोधर एवं क्षामतर मध्य भाग शव में भी काम का संचार कर देने वाले माने गये हैं।

तथाप्युपायशून्येन रूपेणानेन सुन्दरि ।

न प्राप्यन्ते प्रकृष्टेन प्रयत्नेनेव संपदः ॥ १३१ ॥

हे सुन्दरि ! तो भी उपाय से रहित तुम्हारे इस रूप से, प्रकृष्ट प्रयत्न के बिना अप्राप्य सम्पत्ति की भाँति, धन नहीं प्राप्त किये जा सकते ॥ १३१ ॥

गुणवती ललितापि न शोभते वसुतरार्थकदर्थनयान्विता ।

सुकविसूक्तिरिवार्थवती परं व्रजति वेशवधूः स्पृहणीयताम् ॥१३२॥

अलङ्कारों से अलंकृत, ललित एवं अर्थवती होती हुई भी स्वल्प भी अर्थ की कदर्थना से सवलित सुकवि की सूक्ति की भाँति, सौन्दर्यादि-गुणशालिनी, ललित अर्थात् मनोहर तथापि स्वल्प भी धन का तिरस्कार करने वाली वेश्या परम स्पृहणीयता को नहीं प्राप्त करती ॥ १३२ ॥

संसक्तेषु सुरामयी घनगुणाधानेषु लक्ष्मीमयी

स्फीतार्थेषु सुधामयी विषमयी निष्क्रान्तवित्तेषु च ।

वेश्या शङ्खमयी नितान्तकुटिला सद्भावलीनेषु या

देवानामपि सुभ्रु मोहजननी क्षीरोदवेलेव सा ॥ १३३ ॥

हे सुभ्रु ! देवताओं में भी मोह (भ्रम) को उत्पन्न करने वाली, सुरामयी, लक्ष्मीमयी, सुधामयी, विषमयी एवं शस्त्रमयी क्षीर समुद्र की वेला (तरंग) की भाँति, आसक्त व्यक्तियों में मदिरा का काम करने वाली, धनी एवं गुणी व्यक्तियों में लक्ष्मीमयी, प्रभूत सम्पत्तिशाली व्यक्तियों में अमृतमयी सी प्रतीत होनेवाली, धनविहीनों में विषमयी लगनेवाली, सद्भावसमवलित अथवा सद्भावरहित व्यक्तियों में नितान्त कुटिल शस्त्र सी मालूम पड़नेवाली वेश्या, दूसरे के विषय में क्या कहना, साक्षात् देवताओं को भी मोहित करनेवाली होती है ॥ १३३ ॥

इति तया वचनामृतमर्पितं श्रवणपेयमवाप्य कलावती ।
जननि मे द्रविणाधिगमोचितं परिचयं कथयेति जगाद ताम् ॥ १३४ ॥

इति श्रीक्षेमेन्द्रविरचितायां समयमातृकायां पूजाधरोपन्यासो(?)नाम चतुर्थः समयः ।

इस प्रकार उस वृद्धा के द्वारा कहे गये, श्रवण सुखद वचनामृत प्राप्त करके कलावती ने उससे कहा—हे मात ! मेरे लिये प्रचुर धन प्राप्त करने के योग्य उपाय को बतलाओ ॥ १३४ ॥

महाकवि क्षेमेन्द्र के द्वारा विरचित समयमातृका का यह 'पूजाधरोपन्यास' नामक चौथा समय समाप्त हुआ ।



पञ्चमः समयः

अथ मन्मथमत्तानां करिणामिव कामिनाम् ।
बन्धाय बन्धकीशिक्षामाचचक्षे जरच्छिखा ॥ १ ॥

कलावती की प्रार्थना को सुनकर उस जरठा वेश्या ने, काम से मतवाले हाथियों को बाँधने के लिये—वश में करने के लिये—हस्तिनी की शिक्षा की भाँति, कामपीड़ित कामी लोगों को आकृष्ट कर एक दम वश में करने के लिये कुलटाओं—वेश्याओं—को शिक्षा का उपदेश देना प्रारम्भ किया ॥ १ ॥

श्रूयतां पुत्रि सर्वत्र विचित्रोपायवृत्तये ।
मया दुहितृवात्सल्यादर्थ्यं किंचिदुच्यते ॥ २ ॥

हे पुत्रि ! सुनो, सर्वत्र विचित्र उपायों को प्रयुक्त करने के लिये, मैं पुत्री प्रेम के कारण, कुछ काम बात को बतला रही हूं ॥ २ ॥

पूर्वं भावपरीक्षैव कार्या यत्नेन कामिनाम् ।
ज्ञातरागविभागानां कर्तव्यौ त्यागसंग्रहौ ॥ ३ ॥

सर्वप्रथम कामिजनों की, प्रयत्नपूर्वक, भावपरीक्षा ही करनी चाहिये। कामियों में वर्तमान राग (प्रेम, अनुराग) की मात्रा को जानकर ही उनका त्याग अथवा संग्रह करना चाहिये ॥ ३ ॥

कुसुम्भरागः सिन्दूररागः कुङ्कुमरागवान् ।
लाक्षारागोऽथ माञ्जिष्ठो रागः काषायरागभृत् ॥ ४ ॥

केसरिया राग (रंग, कसर), सिन्दूरराग, कुङ्कुमराग, लाक्षा (लाही) राग, माञ्जिष्ठराग (मजीठिया रंग), काषायराग (कसैला-रंग, गेरुआरंग) ॥ ४ ॥

हारिद्रो नीलरागश्चेत्यष्टौ वर्गानुकारिणः ।
सुवर्णरागस्ताम्रारुणो रात्रिरागस्तथापरः ॥ ५ ॥

रागः सीसकसंज्ञश्च लौहो मणिसमुद्भवः ।
काचरागस्तथा शैलो ह्यष्टौ धात्वनुकारिणः ॥ ६ ॥

हरदीराग, नालराग—ये आठ रागरण (रंग) का अनुकरण करनेवाले हैं अर्थात् आठ प्रकार के रंगों के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। सुनहला राग, ताम्र (ताँबा) राग, सीसकराग (शीशाराग), लोहिआराग, मणिसमुद्भवराग, काचराग, शैलराग ये आठ प्रकार के राग धातुओं में रहने वाले हैं ॥ ५-६ ॥

सांध्यरागस्तथा चान्द्रस्तथैन्द्रायुध एव च ।
वैद्युताङ्गारकेत्वाख्यरविरागास्तथैव च ॥ ७ ॥

सन्ध्या के समय होनेवाला राग, चन्द्रमा का राग, इन्द्रधनुषी राग, विद्युत् सम्बन्धी राग, मंगल सम्बन्धी राग, केतु सम्बन्धी राग, सूर्यराग ॥ ७ ॥

राहुरागोऽष्टमश्चेति रागा गगनसङ्गिनः ।
श्रोत्ररागोऽक्षिरागश्च रसनासंश्रयस्तथा ॥ ८ ॥

राहुराग—ये आठ प्रकार के राग आकाश में रहनेवाले हैं। कान का राग (प्रेम) नेत्र का राग, जिह्वा में रहनेवाला राग ॥ ८ ॥

त्वग्रागो घ्राणरागश्च मानसो बुद्धिसंभवः ।
अहंकाराभिधानश्चेत्यष्टाविन्द्रियसंज्ञकाः ॥ ९ ॥

त्वच् का राग, नासिका का राग, मन का राग, बुद्धि का राग और अहङ्कार नामक राग—ये आठ प्रकार के राग (अनुराग, प्रेम) इन्द्रियों में रहने वाले हैं ॥ ९ ॥

शुकरागोऽश्वरागश्च कृकलासाह्वयस्तथा ।
मेषरागः श्वरागश्च खररागस्तथापरः ॥ १० ॥

शुकराग, अश्वराग, कृकलास (गिरगिट) राग, मेषराग, कुक्कुरराग तथा गर्दभराग ॥ १० ॥

मार्जाररागो हस्त्याख्यश्चेत्यष्टौ प्राणिभेदजाः ।
शुकरागो हंसरागस्तथा पारावताभिधः ॥ ११ ॥

बिडालराग, हस्तीराग—ये आठ प्रकार के राग प्राणियों के भेद से समुत्पन्न हैं। शुकराग, हंसराग, पारावतराग ॥ ११ ॥

मयूरश्चटकाख्यश्च कृकवाकुसमुद्भवः ।
कोकिलो जीवजीवाख्यश्चेत्यष्टौ पक्षिजातयः ॥ १२ ॥

मयूरसंबन्धी राग, चटकाराग, कृकवाकु-समुत्पन्न राग, कोकिलराग, चक्रवाकराग—ये आठ प्रकार के राग पक्षिजाति में रहनेवाले हैं ॥ १२ ॥

केशरागोऽस्थिरागश्च नखाख्यः पाणिसंगतः ।
दन्तरागस्तथा पादरागस्तिलकरागवान् ॥ १३ ॥

केशराग, अस्थिराग, नखराग, पाणि में रहने वाला राग, दन्तराग, चरणराग, तिलकराग ॥ १३ ॥

कर्णपूराभिधानश्चेत्यष्टावङ्गविभाविनः ।
छायारागस्तथा भूतरागोऽपस्मारवानपि ॥ १४ ॥

कर्णपूर नामक राग—ये आठ प्रकार के राग अङ्ग में रहने वाले हैं। छायाराग, भूतराग, अपस्मार (मृगी) राग ॥ १४ ॥

ग्रहरागोथ गान्धर्वो यक्षाख्यः सोमरागभृत् ।
पिशाचराग इत्यष्टौ महारागाः प्रकीर्तिताः ॥ १५ ॥

ग्रहराग, गान्धर्वराग, यक्षराग, सोमराग, पिशाचराग—ये आठ प्रकार के राग महाराग कहे गये हैं ॥ १५ ॥

कौसुमः कुम्भरागश्च नारङ्गाङ्कोऽथ दाडिमः ।
मद्यरागः कुष्ठरागो विसर्पाख्यश्चित्राभिधः ॥ १६ ॥

कुसुमराग, कुम्भराग, नारङ्गीराग, अनाराग, मद्यराग, कुष्ठराग, विसर्प (एक प्रकार की बीमारी, छुतहा रोग) राग, चित्रानामक राग ॥ १६ ॥

भ्रामरोऽप्यथ पातङ्गो वृश्चिकाख्यो ज्वराभिधः ।
भ्रमाख्यः स्मृतिजन्मा च रतिरागो ग्रहाभिधः ॥ १७ ॥

भ्रमरसम्बन्धी राग, पतङ्गसंबन्धी राग, वृश्चिकनामक राग, ज्वरनामक राग, भ्रमनामक राग, स्मृतिजन्य रतिराग, ग्रहनामक राग ॥१७॥

रागो रुधिरसंज्ञश्च षोडशैते प्रकीर्णकाः ।
संक्षिप्तं लक्षणं तेषां क्रमेण श्रूयतामिदम् ॥ १८ ॥

रुधिरसंज्ञकराग—ये सोलह प्रकार के राग चतुर्दिक् उपलब्ध होने वाले हैं। इन सबका संक्षेप में इस प्रकार लक्षण सुनो ॥ १८ ॥

कौसुम्भो रक्षितः स्थायी क्षणान्नश्यत्युपेक्षितः ।
स्वभावरूक्षः सैन्दूरः स्नेहस्लेपेण धार्यते ॥ १९ ॥

केसरिया रंग भली भाँति रक्षित रहने पर स्थायी होता है और उपेक्षित होने पर क्षण भर में नष्ट भी हो जाता है। स्वभावतः रूखा सिन्दूरी-सिन्दूरसंबन्धी-रंग स्नेह (तैल-अनुराग) के साथ मिश्रित होने पर ही धारण किया जाता है ॥ १९ ॥

अल्पलीनः सुखायैव घनो दुःखाय कौङ्कुमः ।
तप्तः श्लिष्यति लाक्षाङ्कः श्लेषं नायाति शीतलः ॥ २० ॥

कुङ्कुमराग पतला हलका रहने पर सुखप्रदायक तथा गाढ़ा होने पर दुःखदायक होता है। लाक्षाराग तप्त-उष्ण रहने पर ही जुड़ता है और शीतल हो जाने पर संश्लिष्टता-जोड़-को नहीं प्राप्त होता ॥ २० ॥

तप्तः शीतश्च माञ्जिष्ठः स्थिरभोगक्षमः समः ।
स्थिरो रौक्ष्येण काषायः स्नेहयोगेन नश्यति ॥ २१ ॥

माञ्जिष्ठराग चाहे तप्त हो और चाहे शीतल हो, समानरूप से ही, काफी समय तक भोग प्रयोग के योग्य रहता है। काषायराग रूक्ष रहने पर चिरस्थायी होता है किन्तु यही तैल, पानी आदि चिकने पदार्थ के संयोग से शीघ्र ही नष्ट हो जाता है ॥ २१ ॥

सुरक्षितोऽपि हारिद्रः क्षणेनैव विरज्यते ।
नीलो देहक्षयस्थायी वार्यमाणोऽपि निश्चलः ॥ २२ ॥

सुरक्षित रहने पर भी हरिद्राराग क्षणभरके लिये ही अर्थात् स्वल्प-काल के लिये ही विशिष्टरूपसे रञ्जित होता है। नीलराग [नीला रंग] देह [आधार रूप वस्त्र आदि] के विनाश पर्यन्त रहनेवाला तथा धोने पर भी निश्चल-अमिट होता है॥ २२॥

सौवर्णश्छेदनिर्घर्षतापैस्तुल्यरुचिः सदा ।
मृज्यमानस्य वैमल्यं ताम्रसंज्ञस्य नान्यथा ॥ २३ ॥

सौवर्ण (सुवर्ण सम्बन्धी) राग काटने पर, घिसने पर तथा तपाने पर भी सर्वदा समानरूप से ही चमकीला बना रहता है। ताम्रसंज्ञकराग की विमलता मलने-रगड़ने-पर ही होती है अन्यथा वह मलिन हो जाता है॥ २३॥

रीतिनाम्नस्तु मालिन्यं स्नेहेनाप्युपजायते ।
सैसस्यादौ च मध्ये च क्षये च मलिना रुचिः ॥ २४ ॥

रीतिनामक रंग की मलिनता स्नेह (तैल आदि) से भी होती है सीसक राग आदि मध्य और अन्त में अर्थात् सर्वदा मलिन ही रहता है॥ २४॥

तीक्ष्णस्वभावाल्लोहस्य काठिन्याच्च न नम्रता ।
मणिनाम्ना च निर्व्याजः सहजस्वच्छनिश्चलः ॥ २५ ॥

लोह की कठिनता से भी तीक्ष्ण स्वभाव होने के कारण नम्रता होती है अर्थात् कठोर भी लोह जब तीक्ष्ण करने के लिये तपाया जाता है तब उसमें नम्रता आ जाती है। मणिराग, बिना कारण के भी, स्वभावतः निर्मल और निश्चल होता है॥ २५॥

स्वभावभिदुरः काचसंज्ञश्छलनिरीक्षकः ।
चैलेऽपि गौरवस्यास्मिन् हृदयाभावनीरसः ॥ २६ ॥

स्वभावतः टूटनेवाला काचसंज्ञकराग छलनिरीक्षक (अन्यथा देखने वाला अथवा मसाला आदि से देखने वाला) होता है। हृदयहीन होने के कारण नीरस शैल (शैलराग) भी गौरवपूर्वक उन्नत होकर स्थायी रहने वाला होता है ॥ २६ ॥

सांध्यथलश्च नित्यश्च कल्पदोषो दशाश्रयः ।

चन्द्रागः प्रशान्तार्तिशीतलः क्षयवृद्धिभाक् ॥ २७ ॥

सान्ध्यराग क्षणस्थायी, सर्वदा होनेवाला, रात्रि तथा दोषों (चोरी आदि) का उत्पादक तथा सन्ध्याश्रयी होता है। क्षय एवं वृद्धि का भाजन चन्द्रराग प्रशान्त एवं सन्तापशामक होता है ॥ २७ ॥

ऐन्द्रायुधो बहुरुचिर्वक्रमायाविलासभूः ।

वैद्युतस्तरलारम्भदृष्टनष्टविकारकृत् ॥ २८ ॥

इन्द्रधनुषी राग विभिन्नकान्तिवाला, वक्र एवं माया के विलास का कारण होता है। विद्युत्-सम्बन्धी राग झटिति प्रारम्भ होने वाला, देखने मात्र में ही नष्ट हो जाने वाला और विकार (मेघसंघर्ष) से प्रादुर्भूत होनेवाला होता है ॥ २८ ॥

अङ्गारः स्त्रीजनावज्ञाज्वलितो लोहिताननः ।

केतुसंज्ञः स्फुटानर्थकारी बन्धवधादिभिः ॥ २९ ॥

अङ्गार (भौम) राग स्त्रीजनों की अवज्ञा से अथवा स्त्रीजनों के द्वारा विहित अवज्ञासे प्रज्वलित तथा लोहितानन होता है। केतुसंज्ञक राग बन्धन अथवा वध आदि के द्वारा स्पष्ट रूप से अनर्थ करनेवाला होता है ॥ २९ ॥

आर्कस्तीक्ष्णतया नित्यसंतापः सततोदयः ।

मित्रक्षयैषी विषमो राहुरागो महाग्रहः ॥ ३० ॥

नित्य उदित होने वाला सूर्यराग तीक्ष्ण होने के कारण नित्य ही सन्तापप्रद होता है। भयङ्कर राहुराग मित्र (सूर्य) के विनाश को चाहनेवाला महाग्रह है ॥ ३० ॥

श्रौत्रः कर्णसुखाभ्यासाद् गुणाकर्णनतत्परः ।
अक्षिजन्मा परं रूपमात्रे परिणतस्पृहः ॥ ३१ ॥

श्रौत्र राग कान के सुख के अभ्यास के कारण अर्थात् कान के सुखप्रद वस्तुओं के सुनने के अभ्यास के कारण अच्छे अच्छे गुणों के सुनने में तत्पर रहता है। नेत्रजन्मा राग अर्थात् नेत्रका राग केवल रूप मात्र में ही स्पृहयालु हुआ करता है ॥ ३१ ॥

रासनो विविधास्वादभोज्यसंहारलौल्यवान् ।
त्वङ्मयः सर्वमुत्सृज्य सर्वाङ्गालिङ्गनोत्सुकः ॥ ३२ ॥

रसना-सम्बन्धी राग विविध आस्वादवाले भोजनों के संहार करने का लालची होता है। त्वक् सम्बन्धी राग सब कुछ छोड़कर प्रिय के सर्वाङ्ग के आलिङ्गन के लिये ही उत्सुक रहता है ॥ ३२ ॥

घ्राणाख्यः पुष्पधूपादिभूरिसौरभलोभभृत् ।
मानसः सततास्यस्तस्पृहामात्रमनोरथः ॥ ३३ ॥

घ्राणराग पुष्प, धूप आदि की अत्यधिक सुगन्धि का लोभी होता है। मानसराग सर्वदा अभ्यस्त पदार्थ में ही एकमात्र स्पृहा करने वाला होता है ॥ ३३ ॥

बुद्ध्याख्यो गुणवत्कान्तासक्तिव्यसनवर्जितः ।
अहंकाराभिधः श्लाघ्यसंगमोन्नतिलक्षणः ॥ ३४ ॥

बुद्धि नामक राग गुणशाली प्रिय अथवा प्रिया (कान्त, कान्ता) विषयक आसक्तिरूप व्यसन से वर्जित रहता है। अहंकार नामक राग प्रशंसनीय व्यक्ति अथवा पदार्थ के संगम से उन्नति करनेवाला होता है ॥ ३४ ॥

वृषसंज्ञश्च तारुण्यात्कायदर्पबलोद्भवः ।
अधस्तु रतमात्रार्थी तत्कालोचितकातरः ॥ ३५ ॥

वृषसंज्ञक राग तरुणता के कारण शारीरिक दर्प तथा बल से

उत्पन्न होता है। सद्यः तत्पर तथा पुनः कातर होने वाला अश्वराग रतिमात्र का इच्छुक होता है॥ ३५॥

कृकलासाभिधानश्च स्त्रैणदर्शनचञ्चलः।
मेषाख्यः शष्पकवलाभ्यासतुल्यरतिस्पृहः ॥ ३६ ॥

कृकलास (गिरगिट अथवा छिपकली) नामक राग स्त्री-समूह के दर्शन मात्र से चञ्चल हो उठने वाला होता है। मेष नामक राग घास के ग्रास खाने की स्पृहा के समान ही रति का भी इच्छुक होता है॥ ३६॥

श्वाख्यो रत्यन्तविमुखः स्त्रीरहस्यप्रकाशकः।
गार्दभः क्रूरसंमर्दतृप्तिमात्रपरायणः ॥ ३७ ॥

कुक्कुरराग रति के अन्त में ही विमुख होने वाला तथा स्त्री के एकान्त में होने वाले काम (संभोग) का प्रकाशक (जहाँ तहाँ गली घाट में रति कार्य करके) होता है॥ ३७॥

मार्जारजन्मा सातत्यादत्यन्तनिकटस्थितिः।
कौञ्जरः क्लेशबन्धादिनिरपेक्षसमागमः ॥ ३८ ॥

बिडालोत्पन्न राग निरन्तर के संपर्क से अत्यन्त निकट में ही रहने वाला होता है। हस्ति-राग क्लेश, बन्धन आदि से निरपेक्ष (भय रहित) होकर के स्त्री-समागम करता है॥ ३८॥

शुकाभियोऽन्तर्निःस्नेहः कामं मुखसुखस्थितिः।
हंससंज्ञः सुखस्थित्या गुणदोषविभागकृत् ॥ ३९ ॥

शुक नामक राग भीतर से तो स्नेह शून्य किन्तु मुख से पर्याप्त सुखदायक होता है। हंससंज्ञक राग अपनी सुखपूर्वक स्थिति से गुण और दोष का विभाग करनेवाला होता है॥ ३६॥

पारावताख्यः सस्नेहरतिमर्दस्वलक्षणः।
मायूरः स्ववपुःस्फीतरूपप्रमदनृत्तवान् ॥ ४० ॥

पारावत (कबूतर) संज्ञक राग प्रेम-परिपूर्ण संभोगके समग्र लक्षणों से संयुक्त होता है। मयूरसंबन्धी राग अपने शरीर के फैलाये गये रूप से, प्रमत्त होकर, नाचनेवाला होता है ॥ ४० ॥

बहुशः सुरतासङ्गमात्रार्थी चटकाभिधः ।

कृकवाकुभवः कान्ताक्लेशलेशविभागवान् ॥ ४१ ॥

चटक (गौरैया) नामक राग बहुत अधिक सुरति-संयोग मात्र को ही चाहनेवाला होता है। कृकवाकु-संभव राग प्रिया के स्वल्पातिस्वल्प क्लेश में भी हिस्सा बटाने वाला होता है ॥ ४१ ॥

कोकिलो मधुरालापः प्रभूतप्रसरत्कथः ।

जीवजीवकसंज्ञश्च परिचुम्बननिश्चलः ॥ ४२ ॥

कोकिलराग मधुरभाषी चर्चा का अतिविषय हुआ करता है। जीवजीवक (चक्रवाक) सज्ञक राग परिचुम्बन में निश्चल हुआ करता है ॥ ४२ ॥

केशाख्यः सप्तदिवसस्थायी कृच्छ्रानुरञ्जकः ।

अस्थिसंस्थोऽन्तरस्थश्च प्रच्छन्नस्नेहजीवितः ॥ ४३ ॥

केश-नामक राग सप्ताहान्त तक रहनेवाला एवं बड़ी कठिनाई से अनुरंजन करने वाला होता है। अस्थि (हड्डी) में रहनेवाला राग अन्तरस्थ तथा प्रच्छन्न स्नेह (चिकना धातुविशेष, अनुराग) से जीवित रहने वाला होता है ॥ ४३ ॥

नखाभिख्यो मासमात्रस्थायी याति शनैः शनैः ।

प्राणिनामा प्रबुद्धोऽपि बद्धमुष्टेर्न लक्ष्यते ॥ ४४ ॥

नख-नामक राग, केवल एक मास तक रहने वाला होता है और यह धीरे-धीरे जाता है। प्राणि नामक राग प्रबुद्ध (प्रकट) होता हुआ भी लालची व्यक्ति को दिखलायी नहीं पड़ता ॥ ४४ ॥

दन्ताभिधो यस्ताम्बूललीलामात्ररुचिः सदा ।

पादाख्यश्चरणालीनः प्रणामैरेव केवलम् ॥ ४५ ॥

जो दन्त-नामक राग है वह सर्वदा केवल ताम्बूल-चर्वण में ही रुचि अथवा ताम्बूल-चर्वण से ही रक्तिमा धारण करता है। चरण में पूर्णतः लीन रहने वाला पाद-संज्ञक राग केवल प्रणामों से ही सत्कृत होता है ॥ ४५ ॥

तिलकप्रतिमो नीचस्योत्तमस्त्रीसमागमः ।
कर्णपूरश्च कौटिल्यात्कर्णलग्नोऽतिकत्थनः ॥ ४६ ॥

तिलक-नामक राग तो नीच पुरुष का उत्तम स्त्री के साथ समागम है। कर्णपूर-नामकराग कुटिलता के कारण कान में लगने वाला तथा अत्यधिक बोलनेवाला (बकवादी) हुआ करता है ॥ ४६ ॥

सर्वत्रानुचरः शोषकारी छायाग्रहाभिधः ।
अज्ञातचित्तः स्तब्धाख्यो भूतसंज्ञो निचेतनः ॥ ४७ ॥

छायाग्रह नामक राग अथवा छायाराग सर्वत्र पीछे-पीछे चलने वाला तथा शोषण कर्त्ता होता है। स्तब्ध-नामवाला भूतसंज्ञक राग अपरिचितचित्तवाला तथा चेतना (विवेक) रहित होता है ॥ ४७ ॥

अपस्माराभिधः क्रूरकोपाक्षेपः क्षणे क्षणे ।
ग्रहो वस्त्राञ्चलग्राही मज्जने विजने पथि ॥ ४८ ॥

अपस्मार-संज्ञक राग प्रतिक्षण भयङ्कर कोप (प्रकोप) के कारण आक्षेप (फेंकना-प्रक्षेपण) करनेवाला होता है। ग्रहराग-जनसंकुल अथवा जनरहित मार्ग में वस्त्राञ्चल को पकड़नेवाला माना गया है ॥४८॥

गान्धर्वो गीतनृत्यादिरससंसक्तमानसः ।
यक्षः क्षिप्तो न निर्याति गृहावृत्तिविचक्षणः ॥ ४९ ॥

गान्धर्व राग गीत तथा नृत्य आदि के रस में मन को पूर्णतः संसक्त करनेवाला होता है। यक्ष राग फेंकने पर भी नहीं निकलता है और वह गृह में मुहुर्मुहुः आने में बहुत विचक्षण (बुद्धिशाली) होता है ॥ ४९ ॥

यत्तत्प्रलापमुखरः क्षोभाख्यस्त्यक्तयन्त्रणः ।

पैशाचश्चाशुचिरतस्तीव्रक्षतविदारणः ॥ ५० ॥

क्षोभ-नामक राग हृदय-विदारक पीड़ा का परित्याग करनेवाला तथा जो मुखर अर्थात् अनर्गल प्रलाप करनेवाला होता है। पिशाच-संबंधी राग अपवित्र एवं तीव्र क्षत (नोचने-काटने से होने वाला घाव) से शरीर का विदारण करनेवाला होता है ॥ ५० ॥

कौसुमः क्षणिकोदारः पूजामात्रपरिग्रहः ।

भग्नोऽपि कौम्भः शकलश्लेषे श्लिष्ट इवेक्ष्यते ॥ ५१ ॥

कुसुम राग क्षणिक तथा उदार एव सम्मान मात्र को स्वीकार करनेवाला होता है। कुम्भ राग भग्न हो जाने पर भी टुकड़ों के जोड़ देने पर जुड़ा हुआ सा दीख पड़ता है ॥ ५१ ॥

नारङ्गः सरसोऽप्यन्तर्बहिस्तीक्ष्णः कटुः परम् ।

बहुगर्भतया रूढो हृदये दाडिमाभिधः ॥ ५२ ॥

नारङ्ग (नारङ्गी-संबन्धी) राग भीतर सरस होते हुए भी बाहर से अत्यधिक तीक्ष्ण कटु होता है। दाडिम (अनार) नामक राग अपने भीतर ही भीतर गर्भरूप बहुत से बीजों को धारण करने के कारण प्रौढ अतः कठोर हुआ करता है ॥ ५२ ॥

क्षणक्षैब्योपमो माद्यः स्वस्थो वैलक्ष्यलक्षणः ।

बीभत्साचारवैरस्यात्कुष्ठाख्योऽतिजुगुप्सितः ॥ ५३ ॥

क्षण भर के लिये मत्तता की उपमा को धारण करनेवाला माद्य (मादक वस्तु संबन्धी) राग स्वस्थ एवं अनिर्णय लक्षण वाला होता है। बीभत्स के आचार के कारण अर्थात् बीभत्स होने से विरसता के कारण कुष्ठ नामक राग अत्यधिक जुगुप्सापूर्ण होता है ॥ ५३ ॥

वैरूप्यं च समायाति च्छेदेनेवाङ्गमर्मणाम् ।

चिताभिधानः सर्वाङ्गदाही वदग्रप्रयोगजः ॥ ५४ ॥

विसर्प (वैरूप्य) नामक राग में अङ्गों के मर्म स्थलों (अत्यधिक पीडादायक सन्धि, अस्थि आदि स्थलों) के काटने की सी पीडा एवं विरूपता होती है। *चिता नाम से कहा जाने वाला राग समग्र* अवयवों को जलाने वाला तथा वश्यप्रयोग (वशीकरण नामक प्रयोग) से उत्पन्न होता है ॥ ५४ ॥

भ्रामरः कौतुकास्वादमात्रो नवनवोन्मुखः।

पातङ्गः कामिनीदीप्तिरसिकः क्षयनिर्भरः ॥ ५५ ॥

भ्रामर राग (भ्रमरसम्बन्धी राग) कौतुकवश आस्वाद मात्र करनेवाला तथा नवीन नवीन प्रिय वस्तुओं की ओर जानेवाला (उन्मुख) होता है। पातङ्ग (पतङ्गसम्बन्धी) राग विनाशोन्मुख, एवं कामिनी की कान्ति का रसिक (आस्वादक) होता है ॥ ५५ ॥

वृश्चिकाख्यो व्यथादायी द्वेष्योऽप्यत्यन्तनिश्चलः।

त्यक्ताहारोऽतिसंतापनष्टच्छायो ज्वराभिधः ॥ ५६ ॥

वृश्चिक (बिच्छू) राग अत्यधिक पीडा देने वाला तथा अनभिमत होते हुये भी अत्यन्त निश्चल होता है। ज्वर राग (बुखार राग) आहार का परित्याग करानेवाला एवं अति सन्ताप के कारण शारीरिक कान्ति का विनाशक कहा गया है ॥ ५६ ॥

भ्रमनामा मतिभ्रंशाच्चक्रारूढ इवाकुलः।

स्मरणाख्यः प्रियस्मृत्या कृतान्यस्त्रीसमागमः ॥ ५७ ॥

भ्रम नामक राग मतिभ्रंश (विस्मरण) के कारण चाक पर स्थित अतः आकुल की भाँति होता है। स्मरण नामक राग प्रिय के स्मरण से अथवा प्रिय स्मरण से अन्य स्त्री का सम्भोग करनेवाला अथवा करानेवाला होता है ॥ ५७ ॥

रतिग्रहः सदा स्वप्ने संप्राप्तसुरतोत्सवः।

रौधिरः कलहे रक्तपातनीचस्य वर्धते ॥ ५८ ॥

रतिग्रह (रतिराग) सर्वदा स्वप्न में स्त्री-सम्भोग से उत्पन्न

आनन्द को प्राप्त करनेवाला होता है। रुधिर राग कलह के समय नीच के रक्तपातों से बढ़नेवाला होता है ॥ ५८ ॥

इत्यशीतिः समासेन रागभेदाः प्रकीर्तिताः ।
विस्तरेण पुनस्तेषां कः संख्यां कर्तुमर्हति ॥ ५९ ॥

इस प्रकार संक्षेप में मैंने अस्सी प्रकार के राग के भेदों का वर्णन किया है। विस्तारपूर्वक राग के भेदों की संख्या भला कौन बतला सकता है? अर्थात् राग के भेदों की विस्तृत संख्या बतलाना असम्भव है ॥ ५९ ॥

सुहृज्जनार्जनं कुर्यात्पूर्वं वारविलासिनी ।
वेश्यानां पद्मिनीनां च मित्रायत्ता विभूतयः ॥ ६० ॥

वारविलासिनी (वेश्या) को चाहिये कि वह पहले अपने लिये बहुत से मित्रों का अर्जन करे अर्थात् बहुत से मित्र बनावें; क्योंकि सुन्दरी वेश्याओं अथवा पद्मिनी (स्त्रियों का एकभेद) के लक्षण से सम्पन्न वेश्याओं की प्रचुर सम्पत्ति मित्रों के ही अधीन उसी प्रकार से रहती है जैसे कमलिनी की विभूतियाँ (विकास आदि शोभा) सूर्य के अधीन रहती हैं ॥ ६० ॥

सुहृद्भिरेव जानाति कामुकानां धनं गुणम् ।
हृदयग्रहणोपायं शीलं रक्तापरक्तताम् ॥ ६१ ॥

वेश्या अपने मित्रों के माध्यम से ही कामुक व्यक्तियों के धन, गुण, हृदय को वश में करने का उपाय, स्वभाव एवं अपने में अनुरक्ति तथा विरक्ति को जानती है। वेश्याओं के मित्र उनके व्यापार में बहुत सहायक सिद्ध होते हैं ॥ ६१ ॥

महाधनस्य सुहृदां कामिनां प्रेमशालिनाम् ।
प्रच्छन्नसुरतेनापि कुर्यादाराधनं सदा ॥ ६२ ॥

वेश्या को चाहिये कि वह अत्यधिक धनी व्यक्ति का एवं स्वभावतः

प्रेमप्रवण कामी मित्रों का सत्कार उनके साथ छिपे रूप से सम्भोग करके भी करें ॥ ६२ ॥

एको निचयतः सूनुः पितृहीनः सुयौवने ।
मुग्धे भूभुजि कायस्थः कामिस्पर्धी वणिक्सुतः ॥ ६३ ॥

धनी व्यक्ति का एकमात्र पुत्र (इकलौता बेटा), सुन्दर युवावस्था से सम्पन्न पितृ विहीन व्यक्ति, अथवा धनी व्यक्ति का, युवावस्था में पितृविहीन एकमात्र पुत्र, सौन्दर्य आदि पर मुग्ध राजा, अथवा शासक राजा के भोला भाला अत शिथिल शासक होने पर, कायस्थ, कामिजनों के साथ स्पर्धा करने वाला व्यापारी बनिये का पुत्र ॥ ६३ ॥

नित्यातुरामात्यवैद्यप्रसिद्धस्य गुरोः सुतः ।
·········· ··प्रच्छन्नकामो जाड्य धनः ॥ ६४ ॥

सर्वदा रोगी रहनेवाले व्यक्ति, अमात्य, वैद्य तथा राजगुरु का लड़का, समाज के व्यक्तियों की दृष्टि बचाकर चोरी चोरी वेश्यासम्भोग करनेवाले व्यक्ति, शठधनी (कजूस) ॥ ६४ ॥

नपुंसकप्रवादस्य प्रशमार्थी फलाशनः ।
मत्तो धूर्तसहायश्च राजसूनुर्निरङ्कुशः ॥ ६५ ॥

अपने विषय में नपुंसक होने के प्रवाद का प्रशमन करने की इच्छा वाला व्यक्ति, फलाहारी, मत्त, धूर्तों का मित्र, एवं निरङ्कुश राजपुत्र ॥ ६५ ॥

ग्राम्यो धातृद्विजसुतः प्राप्तलाभश्च गायनः ।
मद्यः सार्थपतिः प्राप्तः श्रीमान्दैवपरायणः ॥ ६६ ॥

ग्रामीण अर्थात् असभ्य, धाई एवं द्विज का पुत्र, पर्याप्त लाभ को प्राप्त किया हुआ गायक, तत्काल प्राप्त सार्थपति (गणपति), सम्पत्तिशाली भाग्यवादी ॥ ६६ ॥

गतानुगतिको मूर्खः शास्त्रोन्मादश्च पण्डितः ।
नित्यक्षीबश्च वेश्यानां जङ्गमाः कल्पपादपाः ॥ ६७ ॥

गतानुगतिक अर्थात् अन्धानुकरण करनेवाला मूर्ख, शास्त्रोन्मादी (शास्त्रप्रवीण होते हुये भी व्यवहार से अनभिज्ञ) पण्डित, मदिरा के पान से सर्वदा मत्त रहने वाला—ये सभी वेश्याओं के लिये चलने-फिरने वाले कल्पतरु माने गये हैं ॥ ६७ ॥

प्रथमं प्रार्थिता वेश्या न क्षणोऽस्तीत्युदाहरेत् ।
जनस्यायं स्वभावो हि सुलभामवमन्यते ॥ ६८ ॥

वेश्या को चाहिये कि वह सर्वप्रथम, लोगों के द्वारा सम्भोग-याचना करने पर, "मेरे पास खाली समय नहीं है" ऐसा कहे। क्योंकि लोगों का यह स्वभाव होता है कि वे सुलभ-आसानी से प्राप्त-स्त्री की अवमानना करते हैं ॥ ६८ ॥

शिरःशूलादिकं व्याधिमनित्यमजुगुप्सितम् ।
अपहारोपयोगाय पूर्वमेव समादिशेत् ॥ ६९ ॥

सम्भोग न करने के हेतु बहाना बनाने के लिये वेश्या को पहले ही शिर की पीडा जैसी सामान्यतः सबको होने वाली व्याधियों को बतलाना चाहिये; किन्तु यहाँ यह स्मरण रखना चाहिये कि ये व्याधियाँ ऐसी न बतलाई जायँ जिनके सुनने से लोगों को घृणा हो ॥ ६९ ॥

पत्नीव कुर्यादनुवृत्तिपूर्वं पूर्वं महार्यस्य वरोपचारम् ।
द्रव्यैस्त्वया मन्त्रजपादिभिर्वा वशीकृतास्मीति वदेच्चमर्वम् ॥ ७० ॥

वेश्या को चाहिये कि वह, सर्वप्रथम, महाधनी व्यक्ति का पत्नी की भाँति चित्त का अनुवर्तन करती हुई पर्याप्त स्वागत सत्कार करे और उससे कहे कि "धन अथवा वशीकरण आदि के प्रयोगों से आपने मुझे अपने वश में कर लिया है।" इसी प्रकार की और बहुत सी बातें उसे कहनी चाहिये ॥ ७० ॥

स्वयं प्रदत्तेऽपि नखक्षते च शङ्केत तद्भक्तिविवादशीलम् ।
निन्देत्प्रकामं जननीं विरुद्धां गच्छेत्स्वयं वेश्म च कामुकस्य ॥ ७१ ॥

वेश्या की स्वविषयिणी भक्ति के विषय में विवादशील (तुम हृदय से मुझे नहीं चाहती, तुम्हारी मुझ में सच्ची भक्ति नहीं है आदि कह कर विवाद करने वाले) अथवा अपनी वेश्यासम्बन्धिनी भक्ति के विषय में विवाद करने वाले (प्रेम पर शङ्का करने वाली वेश्या से "मैं तुम्हारा अनन्य भक्त हूँ" आदि कहने वाले) धनी व्यक्ति के शरीर पर स्वयं अपने द्वारा किये गये नखक्षत पर भी वेश्या को शङ्का करनी चाहिये। कपटपूर्वक विरुद्ध की भाँति आचरण करने वाली माता की खूब निन्दा करनी चाहिये (जैसे—यह बुढ़िया एकमात्र आप के ही ऊपर मेरे प्रगाढ़ प्रेम को देखकर जलती है अतः मेरे पास आने के लिये आप को समय देने में आनाकानी करती है) और कभी कभी स्वयं ही उस कामुक के घर वेश्या को चली जाना चाहिये ॥ ७१ ॥

विदेशयात्रामपि मन्त्रयेत तेनैव सार्धं निहितानुरागा ।
सुप्तस्य कुर्यात्परिचुम्बनं च गुणस्तुतिं चार्धविबोधभाजः ॥ ७२ ॥

धनिक कामुक के साथ अपने दृढ़तर सम्पर्क को बनाये रखने वाली युवती वेश्या उसी के ही साथ विदेश यात्रा की भी मन्त्रणा करे। सो जाने पर उसका चुम्बन करे और जब वह अर्द्ध निद्रा की अवस्था में रहे तब उसके गुणों की प्रशंसा करे ॥ ७२ ॥

स्वप्ने सदैव प्रलपेत्सरागं सर्वं च तन्नामनिबद्धमेव ।
न चास्य तृप्तिं सुरतेषु गच्छेद्व्ययस्य कुर्याच्च मुहुर्निषेधम् ॥ ७३ ॥

स्वप्न में भी सर्वदा उसके (कामुक के) नाम के साथ अर्थात् उसके नाम को ले ले कर के अनुरागपूर्वक सब कुछ प्रलाप (स्वप्न-शब्द) करे—जैसे—हे गुणनिधि जी ! (व्यक्ति का नाम) आप मुझ अभागिन को अकेली छोड़ कर कहाँ जा रहे हैं ? आप के बिना मेरा जीना असम्भव है। आदि आदि। इसके (धनी कामुक के) साथ सम्भोग की तृप्ति की कभी न प्रगट करे—सम्भोग की परिसमाप्ति पर

उससे कहे कि मैं तो आप के साथ सम्भोग में अपार आनन्द का अनुभव करती हूँ। मेरी इच्छा सर्वदा आप के साथ रमण की होती है और जब वह उस वेश्या को द्रव्य आदि देने लगे तो उसका भी निषेध करे ॥ ७३ ॥

टिप्पणी—यहाँ यह स्मरणीय है कि वेश्या उक्त सब काम सचाई के साथ न कर बनावटी रूप से ही करती है। किन्तु अभागा कामुक इन सब बातों को सत्य मान कर अपना सब धन उसे दे देता है।

तस्माच्च पुत्रार्थमनोरथा स्यात्प्राणात्ययं तद्विरहे वदेच्च ।
इत्यादिभिः स्वीकरणाद्युपायैर्निबद्धबुद्धेर्द्रविणं लभेत ॥ ७४ ॥

उससे (धनी कामुक से) वह (वेश्या) पुत्रोत्पत्ति की कामना करे और उसके विरह में अपने प्राणों के परित्याग की भी बात कहे। इन्हीं सब वश में करने के उपायों से अत्यधिक आसक्त कामुक के द्रव्य को प्राप्त करे ॥ ७४ ॥

तावच्च तूर्णं धनमाहरेत यावत्स रागेण विनष्टसंज्ञः ।
प्रशान्तरागानलशीतलस्तु स लोहपिण्डीकठिनत्वमेति ॥ ७५ ॥

वेश्या को चाहिये कि वह अति शीघ्र कामान्ध अतः बुद्धिभ्रष्ट कामुक के सब धन का हरण कर ले। अन्यथा वह (कामुक) कामजनित रागानल के प्रशान्त होने पर पहले अग्नि के ताप से कोमल और बाद में—अग्नि के प्रशान्त हो जाने पर—कठोर लौह पिण्ड की भाँति कठिनता (अति कंजूसी) को प्राप्त हो जायगा ॥ ७५ ॥

याचेत सर्वं सुरतार्तिकाले तमूरुबन्धेन निरुद्धकायम् ।
प्रायेण तृप्ताय न रोचते हि विनष्टशालापरिपक्वमाम्रम् ॥ ७६ ॥

सुरत के समय क्रम के बढ़ने पर आनन्द के काल में अपनी जंघाओं की पकड़ से कामुक के शरीर को निरुद्ध करके उससे सब कुछ माँगना चाहिये। अन्यथा सुरत से परितृप्त अतः काम-विरत व्यक्ति से यथेच्छ धन निकाल पाना कठिन होता है; क्योंकि परितृप्त व्यक्ति

को झुकी हुई शाखा के पर्याप्त पके हुये आम भी प्रायः अच्छे नहीं लगते ॥ ७६ ॥

संधारयेत्तं च विशेषवित्तं यावन्न निःशेषधनत्वमेति ।
पुनः पुनः स्नेहलवार्द्रवक्त्रा दीपं यथा दीपकदीपवर्तिः ॥ ७७ ॥

जिस प्रकार पुनः पुनः तैलकण से सिक्त मुख वाली दीपक की बत्ती दीपक को धारण किये रहती है—प्रकाश के योग्य बनाये रखती है; उसी प्रकार प्रेमलव से प्रसन्न मुखवाली वेश्या को भी विशिष्ट धनी व्यक्ति को तब तक बारम्बार अङ्गीकार किये रहना चाहिये जबतक कि वह पूर्ण निर्धन नहीं हो जाता ॥ ७७ ॥

निष्पीतसारं विरतोपकारं क्षुण्णेक्षुवल्कप्रतिमं त्यजेत्तम् ।
लब्धाधिवासक्षयकारिशुष्कं पुष्पं त्यजत्येव हि केशपाशः ॥ ७८ ॥

माररूप सम्पूर्ण धन के ग्रहण कर लेने से उपकार करने में असमर्थ अतः मलीन अथवा मुख के द्वारा चूसी गयी ईख की छोई के समान निस्तत्त्व कामुक का त्याग कर देना चाहिये। स्त्रियों का केशपाश (जूड़ा) अपने ऊपर लगे हुए पुष्प का उस समय परित्याग ही कर देता है जब कि वह मुरझा कर शुष्क हो जाता है ॥ ७८ ॥

हेमन्तमार्जार इवातिलीनः स चेन्न निर्याति निरस्यमानः ।
तदैष कार्यस्तनुमर्मभेदी प्रवर्धमानः परुषोपचारः ॥ ७९ ॥

यदि वह कामुक तिरस्कारपूर्वक निकालने पर भी, हेमन्त काल में घर के अन्दर चूल्ही में अत्यन्त तन्मयता के साथ स्थित बिडाल की भाँति, नहीं निकलता है; तब उसके साथ अत्यन्त तीक्ष्ण, मर्मस्थल का विदारक, कठोर व्यवहार करना चाहिये। ये व्यवहार आगे क्रमशः बतलाये जा रहे हैं ॥ ७९ ॥

शय्यावहारैर्वचनप्रहारैः कोपप्रकारैर्जननीविकारैः ।
कौटिल्यसारैर्विविधप्रसारैर्विपद्विचारैर्गणितापचारैः ॥ ८० ॥

उस कामुक के साथ शैया पर शयन के परित्याग से, कठोर वचनों के प्रहार से, कोप करने से, माता (कुट्टिनी) के क्रोध आदि से, कुटिलतापूर्ण विविध प्रकार की विपत्तियों के विचार के अर्थात् विपत्तियों को ले आकर के, अनुचित व्यवहारों को गिना करके; ॥ ८० ॥

याञ्चाविवादैरधनापवादैर्दत्तानुवादैः परसाधुवादैः ।
निन्दाप्रवादैः परुषप्रवादैर्विटप्रवादैः कथितावसादैः ॥ ८१ ॥

याच्ना के विवाद से ('मुझे अमुक वस्तु दीजिये' ऐसा करने के अनन्तर झगडा करके), निर्धन व्यक्तियों के लिये प्रयुक्त दुर्वचनों से, अन्य व्यक्ति के द्वारा प्रदत्त वस्तु के कथन से, अन्य लोगों से लिये प्रदत्त धन्यवादों से, निन्दा पूर्ण वचनों से, हृदय को विद्ध करने वाले वाक्यों से, विटों के प्रवादों से, कष्ट के कथनों से; ॥ ८१ ॥

मुहुः प्रवासैः कलहोपवासैर्मायानिवासैः कटुकाधिवासैः ।
सभ्रूविलासैर्व्यसनोपवासैर्निष्कासनीयः स पृथुप्रयासैः ॥ ८२ ॥

विदेश गमनों से, कलहपूर्वक उपवासों से, कपटपूर्वक इतस्ततः निवास करने से, कामुक के अप्रिय व्यक्तियों को घर में बसाने से, भौंहों को चमका चमका करके अर्थात् भौंहों से इङ्गितपूर्वक मद्य आदि के सेवन अथवा क्रीडा आदि, तथा उपवासों से, दीर्घावधिक प्रवासों से निर्धन कामुकों को निकाल देना चाहिये ॥ ८२ ॥

स चेत्पुना रागजतुप्रसक्तस्तीव्रावमानैरपि न प्रयाति ।
तदा तमुत्क्षिप्तभुजान्यवक्त्रा दासी वदेद्वित्तवियोगदीनम् ॥ ८३ ॥

यदि चेत् पुनः रागरूपी लाह से अत्यन्त आसक्त वह कामुक तीव्र अपमान करने पर भी नहीं जाता है, तब वित्त के अभाव से दीन उस व्यक्ति से हाथ को उठा करके और दूसरी ओर मुह करके दासी कहे :—॥ ८३ ॥

यत्राभवत्कामुकलोकयात्रा विचित्ररूपा सततं विभूतिः ।
गृहे चतुर्थं दिनमद्य तस्मिन्दग्धस्य दग्धस्य वधूत्सवस्य ॥ ८४ ॥

जहाँ पर कामुक व्यक्तियों की विभिन्न एवं विचित्र रूपवाली, सर्वदा सम्पत्ति से परिपूर्ण लोकयात्रा (व्यवहार-निर्वाह एवं आना-जाना) हुआ करती थी, वेश्याओं के उन घरों में सौभाग्यसे पूर्ण वधूत्सव (स्त्रियों के द्वारा मनाया जानेवाला एक त्यौहार) का आज चौथा दिन है ॥ ८४ ॥

क्लीबस्य यस्यास्ति न भोगसंपत्स किं भुजिष्याभवने करोति ।
न यस्य हस्ते तरमूल्यमस्ति स किं समारोहति नावमग्रे ॥ ८५ ॥

जिस नपुंसक के पास सम्भोग के लिये धन नहीं है वह वेश्या के घर में भला क्या करता है ? जिस व्यक्ति के हाथ में उतराई का पैसा नहीं है, क्या वह नाव पर, पार होने के लिए चढ़ता है ? ॥८५॥

प्रक्षीणवित्तेन निरुद्यमेन किं रूपयुक्तेन करोति वेश्या ।
विच्छिन्नदुग्धा न पुनः सगर्भा सा कस्य गौश्चारुतयोपयुक्ता ॥ ८६ ॥

सौन्दर्ययुक्त, निर्धन तथापि निरुद्यम व्यक्ति से वेश्या क्या करती है ? दुग्धरहित और पुनः गर्भवती न हुई गौ भला किस व्यक्ति के लिये भले काम की उपयोगी वस्तु है ? ॥ ८६ ॥

मिथ्यैव रिक्तः कुरुते जडानामावर्जनं प्रेममयैर्वचोभिः ।
क्षीरक्षये चुम्बनलालनेन बालस्य वृद्धिं विदधाति धात्री ॥ ८७ ॥

धन विहीन व्यक्ति व्यर्थ में ही प्रेम-परिपूर्ण वचनों से जडव्यक्तियों का आवर्जन (सिपारिश, मनोरञ्जन) करता है। दूध के समान हो जाने पर धात्री चुम्बन एवं लालन-दुलार-से ही बालक को बहलाती है— बढ़ाती है। धात्री (धाई) स्तन के दुग्ध क्षीण हो जाने पर चुम्बन एवं दुलार के द्वारा बालक की वृद्धि को करती है ॥ ८७ ॥

इत्यादिभिस्तद्वचनावमानैस्तस्मिन्गते ग्रीष्मतुषारतुल्ये ।
क्षीणं निरस्तं पुनराप्तवित्तं भजेत यनाहृतवित्तमन्यम् ॥ ८८ ॥

इस प्रकार के अपमानपूर्ण वचनों से निरस्कृत, ग्रीष्मऋतु के जाड़ा के समान अहितकर उस कामुक के चले जाने पर, वेश्या को

चाहिये कि वह पहले निर्धन होने के कारण निकाले गये और पुनः धनी हुये व्यक्ति को तथा उद्योगपूर्वक धन इकट्ठा करनेवाले अन्य व्यक्ति को भी अङ्गीकार करे ॥ ८८ ॥

प्राप्ते कान्ते कथमपि धनादानपात्रे च वित्ते
त्वं मे सर्वं त्वमसि हृदयं जीवितं च त्वमेव ।
इत्युक्त्वा तं क्षपितविभवं कञ्चुकाभं भुजंगी
त्यक्त्वा गच्छेत्स्वधनमपरं वैशिकोऽयं समासः ॥ ८९ ॥

किसी प्रकार से धन ग्रहण करने के पात्र अर्थात् जिनसे धन लिया जा सके ऐसे कान्त पुरुषके प्राप्त होने पर "तुम ही हमारे हृदय हो, तुम ही हमारे प्राण हो और तुम ही हमारे सब कुछ हो" ऐसा कहकर धन प्राप्त करके कञ्चुकाभ (केंचुल-सदृश अर्थात् निरर्थक) व्यक्ति को भुजङ्गी (वेश्या) उसी प्रकार से छोड़ करके अन्य धनी व्यक्ति का सेवन करे जैसे सर्पिणी बिना किसी मोह के अपने केंचुल को छोड़ देती है। यही वेश्याओं की पद्धति है ॥ ८९ ॥

उद्देशलेशेन यदेवदुक्तं तत्कार्यकाले विविधप्रयोगम् ।
तस्मात्स्वबुद्ध्यैव विचार्य कार्यमुक्त्वेति तूष्णीं जरती चकार॥ ९० ॥

इति श्रीक्षेमेन्द्रविरचितायां समयमातृकायां रागविभागोपन्यासो नाम पञ्चमः समयः

संक्षेप में यह जो कुछ कहा गया है कार्य के समय विविध प्रकार से प्रयोगार्ह है। इसलिये अपनी बुद्धि से विचार करके करना चाहिये ऐसा कहकर वह वृद्धा कुट्टिनी चुप हो गई ॥ ९० ॥

श्री क्षेमेन्द्र के द्वारा विरचित समय मातृका का 'रागविभागोपन्यास' नामक पञ्चम समय समाप्त हुआ।



षष्ठः समयः

अथ क्षणक्षीणधनायमाने शनैः शनैर्निष्प्रतिभे शशाङ्के ।
द्यौर्दोषयुक्तेव विलोकनेन सविभ्रमा मीलिततारकाभूत् ॥ १ ॥

इसके अनन्तर स्वल्पकाल के लिये सामान्यरूप से समृद्ध हुये अथवा ब्राह्म मुहूर्त की पुण्य वेला में चन्द्रिकारूपीधन के क्षयवाले चन्द्र के धीरे धीरे कान्तिहीन हो जाने पर, परिवर्तनशीला द्यौ (आकाश) उसी प्रकार से, देखने मात्र में ही, नक्षत्रशून्य हो गई जैसे अपराध करनेवाली अत अशान्त अन्त करणवाली स्त्री लोगों के देखनेमात्र से ही अपनी आँखों को बन्द कर लेती है ॥ १ ॥

इन्दौ प्रयाते कृतरात्रिभोगे प्रवेशकाले चिरकामुकस्य ।
वेश्येव संध्या गगनाङ्गनाग्रं निर्दिष्टताराकुसुमं चकार ॥ २ ॥

रात्रिरूपी नायिका का सम्भोग कर चुकनेवाले चन्द्र के अस्त हो जाने पर, रात्रिपर्यन्त वेश्या का सम्भोग करनेवाले कामुक के चले जानेपर तथा चिरकामुक (जिसने उत्कण्ठा के कारण रात्रि भर अपनी पारी की प्रतीक्षा की है) के वेश्या के घर में प्रवेश का समय, होने पर, वेश्या की भाँति सन्ध्या ने द्यौरूपी स्त्री के सम्मुख कुछ इने गिने तारारूपी कुसुमों को धारण किया ॥ २ ॥

अथोदिते स्वस्थितिदानदक्षे बाले रवौ श्रीमति पङ्कजिन्याः ।
विकासकाले मधुपानकेलिरभूद्विटानामिव षट्पदानाम् ॥ ३ ॥

इसके बाद, अपनी स्थिति से प्राणियों को जीवनदान देने में दक्ष, प्रभामण्डित, बाल सूर्य के उदित होने पर कमलिनी के विकासकाल में, विटों की भाँति, भ्रमरों का मधुपान (मदिरापान, पुष्परसपान) का उत्सव हुआ ॥ ३ ॥

कलावती मौक्तिकभूषणाङ्का धम्मिल्लमाल्यप्रणयप्रसक्तैः ।
श्रृङ्गारिणा दर्पणमीक्षमाणा सतारका चन्द्रवती निशेव ॥ ४ ॥

स्मराङ्गनानेलिशुकायमानस्रस्थताम्बूलविलासपूर्णा ।
समातृका नापितदत्तहस्ता कान्तां तनुं पण्यदशां नयन्ती ॥ ५ ॥
सलीलमात्रान्तिविलोलकाञ्चीरवेण पारावतदत्तसंज्ञा ।
अर्थार्थिनी राजपथप्रकारं हर्म्यं प्रियोत्सङ्गमिवारुरोह ॥ ६ ॥

स्तनों के नीचे तक लटकती हुई मोती की माला को धारण करनेवाली, केशपाश (जूडा) में गुथी हुई माला की सुगन्धि से आकृष्ट भ्रमरों से घिरी हुई, दर्पण को देखती हुई, भाल में बिन्दु लगाने के कारण चन्द्रमा से उद्भासित रात्रि की शोभा को धारण करने वाली; काम क्रीडा अथवा रति क्रीडा में शुक की भाँति आचरण करने· वाले अर्थात् कामोद्दीपक, हाथ में लिये गये पान के विलास से पूर्ण, अपनी नवागत माता को साथ लिये, नापित के हाथ में हाथ मिलाये, अपनी सलोनी शरीर को द्रव्य से खरीदने के योग्य अवस्था को प्राप्त कराती हुई, विलास (नाज नखरा) पूर्वक सीढी पर चढने से हिलनेवाली करधनी के शब्द से गृह-कबूतरों को अपने आगमन का सकेत देती हुई, धन को चाहनेवाली, कलावती ने राजमार्ग के किनारे स्थित अपने पक्के महल की छत पर, प्रियतम की गोदी की भाँति, चढी ॥ ४-६ ॥

तामत्रवीत्तत्परिभोगयोग्यं प्रातर्नवं कामुकमीक्षमाणः ।
विलोक्य वङ्कः शयनोत्थितानां पण्याङ्गनानां गणयन्विचेष्टाः ॥ ७ ॥

कलावती के सम्भोग के योग्य, प्रातःकाल, नवीन कामुक को देखता हुआ, इधर उधर देखकर, शयन से उठी हुई, वारवनिताओं की विविध चेष्टाओं का आकलन करते हुये 'वङ्क' नामक नापित ने कलावती से कहा ॥ ७ ॥

आसन्नमित्रागममुच्यमानसमागमे नागरवल्लभस्य ।
निर्यान्ति दीपा इव रात्रिभोग्याः पश्य प्रभाते गणिकागृहेभ्यः ॥ ८ ॥

देखो दिनमणि सूर्य के उदित होने पर निष्प्रभ होकर बुझने वाले दीपकों की भाँति, आसन्न मित्रों के आगमन के कारण सहवास की परिसमाप्ति पर रात्रि में वेश्याओं के सम्भोग्य कामुकजन, प्रात:काल के होने पर, गणिकाओं के गृहों से निकल कर जा रहे हैं ॥ ८ ॥

एष प्रबुद्धः सहसा जटामुण्डीलाशिरः कुक्कुटकूजितेन ।
गृहान्नलिन्याः परिहृत्य राजरथ्यां कुमार्गेण मठं प्रयाति ॥ ९ ॥

मुर्गों के बोलने से सहसा जगा हुआ अथवा प्रातःकाल के विषय में सचेत हुआ, जटाधारी, 'लीलाशिर' नामक मठाधिपति 'नलिनी' वेश्या के घर से निकलकर "वरदा के घर से आते हुए मुझे लोग देख न लें" इस विचार से राजमार्ग को छोड़कर कुमार्ग से—बगल की गली से—अपने मठ को जा रहा है ॥ ९ ॥

टिप्पणी—यहाँ पर कवि ने कुमार्ग शब्द का प्रयोग कर मठाधिप के पथभ्रष्ट होने की ओर संकेत किया है।

एते निधेर्निग्रहभट्टसूनोः पृष्टा विटा रात्रिसुखं प्रभाते ।
कर्तुं प्रवृत्ताः पृथुभोज्यभूरिव्ययाय भद्राभवने विभागम् ॥ १० ॥

प्रातःकाल 'निग्रहभट्ट' के पुत्र अथवा कोतवाल के पुत्र 'निधि' के द्वारा रात्रि के सुख, आनन्द के विषय में पूछे गये विट जन, 'भद्रा' वेश्या के घर में, दिव्य भोजन में पर्याप्त व्यय होनेवाले द्रव्य को परस्पर बाँटने में संलग्न हैं ॥ १० ॥

प्राप्ते गृहद्वारमनङ्गमारे महाविटे पदरं यमन्तसेना ।
शून्यमनुमापि पुरः समेत्य निशीथभोगं कथयत्यसत्यम् ॥ ११ ॥

देखो, काम से मतवाले महाविट (प्रसिद्ध बलशाली कामुक) के घर के दरवाजे पर आने के अनन्तर अगवानी करती हुई वसन्तसेना (वेश्या का नाम) रात्रि भर अकेली एकान्त में सोई रहने पर भी झूठ बोलती हुई अपनी रात्रि के सम्भोग का वर्णन कर रही है ॥ ११ ॥

टिप्पणी—यह मनोवैज्ञानिक बात है कि जिस स्त्री के पास बहुत से व्यक्ति आते जाते हैं, उसको अन्य लोग भी चाहते हैं और जिसके पास कोई भी नहीं जाता उसमें अन्य नवागन्तुक अथवा परिचित लोग भी प्रेम नहीं दिखलाते। यही कारण है कि वसन्तसेना पूछे ही अपने रात्रि-सम्भोग का बात कह रही है।

भग्नाङ्गदा त्रोटितकर्णपाली मतङ्गनाम्ना गणपालकेन।
आत्मापराधं विनिगूहमाना विरौति रामा जननीजनाग्रे ॥ ११ ॥

रतिकेलि के कलह में, हाथी की भाँति मतवाले 'मतङ्ग' नामक गणपाल के द्वारा अङ्गद (बाजू बन्द) के भग्न हो जानेपर तथा कर्णाभूषण (कान की बाली) के टूट जाने पर अपने अपराध को छिपाती हुई 'रामा' वेश्या अपनी माताओं (कुट्टिनियों) के सामने प्रलाप कर रही है ॥ १२ ॥

निर्गच्छतो ग्रामनियोगिनोऽस्य ददाति गुप्तस्य समेत्य पश्चात्।
इदं तथेदं च पुरः प्रहेयमित्यादि संदेशशतानि वृद्धा ॥ १३ ॥

घर से निकलनेवाले ग्राम के अध्यक्ष इस 'गुप्त' को पीछे से आकर "यह और यह बात आगे छोड़ देनी चाहिये" इत्यादि सैकड़ों सन्देशों को वृद्धा (कुट्टिनी) दे रही है ॥ १३ ॥

संप्रस्थितेयं सह माधवेन कोशं नु गं पातुमनङ्गलेखा।
अग्रे यदस्या मधुकुम्भग्राही मेषं निकर्षन्पुरुषः प्रयाति ॥ १४ ॥

निश्चय ही यह 'अनङ्गलेखा' मदिरा के पुरवा (कप) को पीने के लिये 'माधव' के साथ जा रही है। क्योंकि इसके आगे मदिरा के घट को लिये हुये मेंडा को खींचता हुआ एक पुरुष सेवक चल रहा है ॥ १४ ॥

टक्कस्य सा चलितस्य निद्राय यत्स्कन्दस्दानकाले।
प्रसाधनाय स्वयमेव गन्तुं समुद्यता पश्य शशाङ्कलेखा ॥१५॥

देखो, ब्राह्मण के लिये मुद्रा-दान करने में इस सैनिक (सेनाधिपति) के साथ सम्भोग के लिये निर्धारित समय के पूर्व 'शशाङ्कलेखा' स्वयं ही अपना प्रसाधन (मेकअप) करने के हेतु जाने के लिये समुद्यत है ॥ १५ ॥

उद्यानलीलागमने निशायां सुनिश्चिते मल्लिकयार्जुनस्य ।
कृतः प्रभाते नवचीनवस्त्रदानं विना पश्य मुहूर्तविघ्नः ॥ १६ ॥

देखो, रात्रि में 'मल्लिका' के साथ 'अर्जुन' के उद्यानविहार में जाने के निश्चित हो जाने पर प्रातःकाल नवीन सिल्कवस्त्र के न देने से मुहूर्त का विघ्न ही किया गया है ॥ १६ ॥

टिप्पणी—पहले प्रथा के अनुसार कोई भी व्यक्ति जब किसी वेश्या को उद्यान केलि के लिये बुक करता था तब वह उस वेश्या को प्रातः काल ही, जब की उद्यान केलि का निर्धारण होता था, एक सिल्क वस्त्र भेंट करता था। इसके बाद यात्री मानी जाती थी।

मेषप्रदस्येन्द्रवसोर्द्विजस्य भुक्त्वा प्रभूतं निशि कालखण्डम् ।
विषूचिकार्ता विटहर्षहेतुर्वैद्यार्थिनी क्रन्दति कुट्टनीयम् ॥ १७ ॥

रात्रि में, भेंड़ा देनेवाले 'इन्द्रवसु' द्विज के द्वारा प्रदत्त मेष (भेंड़ा) के कलेजा को बहुत अधिक मात्रा में खाकर के परिणाम-स्वरूप हैजा से पीड़ित, विटों के हर्ष का कारण (विट लोग उसे हैजा से पीड़ित देखकर प्रसन्न हो रहे हैं), यह कुट्टिनी वैद्य को बुलाये जाने के लिये चिल्ला रही है ॥ १७ ॥

वैद्योऽप्ययं मण्डलगुप्तनामा प्रभातचारी नगरार्जितानि ।
समुद्यतः पूगफलानि दातुं कुरङ्गिकायै निजमुष्टिपूर्णैः ॥ १८ ॥

प्रातःकाल पर्यटन करनेवाला 'मण्डलगुप्त' नामक यह वैद्य भी नगर में प्राप्त किये गये पूगफलों (सुपाड़ी) को अपनी मुट्ठियों में भर भर के 'कुरङ्गिका' को देने के लिये तत्पर है ॥ १८ ॥

कशालनाम्ना निशि गायनेन वारावहाराविशभग्नभाण्डा ।
गृह्णाति का नो चरणस्पृशोऽस्य वरांशुकं कुण्डघटादिमूल्यात् ॥१९॥

'कशाल' नामक रात्रि के गायक के द्वारा भीड़ बचाते समय अथवा हास्य से मदिरा पीने के पात्र को चुराते समय भाण्ड के फूट जाने पर यह कौन वेश्या है, जो चरण पकड़नेवाले इस गायक के बहुमूल्य वस्त्र को कुण्डा और घट के मूल्य के रूप में नहीं ले रही है ? ॥ १९ ॥

प्राप्तस्य शंभोर्वणिजस्तु वारे सुप्तस्य शून्ये शयने निशायाम् ।
नन्दा समेत्यापरकामिगेहात्सविप्रलम्भं शपथं करोति ॥ २० ॥

सोमवार के दिन अथवा अपने लिये निर्धारित समय में आये हुये 'शम्भु' नामक वणिक् के शून्य शयन पर रात्रि में सो जाने पर 'नन्दा' वेश्या दूसरे कामुक के घर से आकर के उसके सामने कपट पूर्वक, अन्य किसी के साथ सभोग न करने के लिये शपथ खा रही है ॥ २० ॥

पितुर्गृहाद्भूरिविभूषणानि प्राप्तं गृहीत्वा मदनं मृणाली ।
निगूह्य संदर्शयति स्वगेहं शून्यं तमन्विष्टुमुपागतानाम् ॥ २१ ॥

'मृणाली' पिता के घर से बहुत से आभूषणों को लेकर आये हुये 'मदन' से आभूषणादि लेकर और उसे (मदन को) छिपा कर उसको (मदन को) खोजने के लिये आये हुये लोगों को अपना सूना घर दिखला रही है ॥ २१ ॥

भोज्यं विना पाटलिका प्रविष्टं मुष्टिप्रदं श्रोत्रियमत्रिरात्रम् ।
शुष्कान्नदाता पितृकार्यमेतत्किं किं करोषीत्यसकृद्ब्रवीति ॥ २२ ॥

'पाटलिका' भोज्य (वेश्या का सभोग शुल्क) अथवा भोजन सामग्री को बिना लिये ही घर में आये हुये तथा मुट्ठी भर अन्न देनेवाले याज्ञिक 'अत्रिरात्र' से बारम्बार पूंछ रही है कि—क्या यह पितृकार्य (श्राद्ध) है ? यह आप क्या कर रहे हैं ? ॥ २२ ॥

मार्जारजिह्वा जननी हरिण्याः परस्य भोज्यं निशि लुण्ठितं यत् ।
तस्मिन्गते तद्विजने विशङ्का पश्य प्रभाते कवलीकरोति ॥ २३ ॥

देखो, 'हरिणी' की, बिडाल की भाँति लम्बी एवं चटोर जीभवाली "मार्जार-जिह्वा" नामक माता (कुट्टिनी) रात्रि में 'पर' से छीने गये भोजन को उसके चले जाने पर एकान्त में निःशङ्क होकर, प्रातःकाल, खा रही है ॥ २३ ॥

ईर्ष्याविशेषात्कृतकोपवादसंमूर्च्छितायां मलयं रमण्याम् ।
विभूषणं तोषणमाशु किंचिदस्यै प्रयच्छेति वदन्ति सख्यः ॥ २४ ॥

ईर्ष्या विशेष के कारण किये गये कोप से रमणी के मूर्च्छित हो जाने पर "इसके शरीर पर मलय चन्दन और अतिशीघ्र शीतलता प्रदान करने वाला कोई विभूषण (मुक्तामाला, चन्द्रमणि आदि) लगाओ" इस प्रकार सखियाँ कह रही हैं ॥ २४ ॥

टिप्पणी—शरीर पर शीतल पदार्थ के रखने से क्रोध की उग्रता कम हो जाती है और मूर्च्छित व्यक्ति चेतना में लौट आता है ।

रागेण कृष्णीकृतकेश एष वलीविशेषस्फुटवृद्धभावः ।
यागागृहं शम्बरसारनामा यागाय युग्येन गुरुः प्रयाति ॥ २५ ॥

राग (खिजाब आदि बाल को काला करनेवाले पदार्थ; स्त्री-विषयिणी आसक्ति) से अपने श्वेत केशों को काला करनेवाले, वली-विशेष (शरीर पर पड़ी झुर्रियों) से स्पष्टरूप से वृद्ध प्रतीत होनेवाले 'शम्बरसार' नामक गुरु याग के लिये युग्य (बग्घी) से यागगृह को जा रहे हैं ॥ २५ ॥

अयं जनस्थानविनाशहेतुः केतुः खरक्रूरतया प्रसिद्धः ।
आस्थानभट्टश्चिटिवरसनामा प्रयाति युग्येन विशीर्णखरः ॥ २६ ॥

अपनी अत्यधिक क्रूरता के लिये प्रसिद्ध अथवा खर नामक राक्षस के समान क्रूरता के लिये विख्यात, जनस्थान (दण्डकारण्य का एक स्थान, पक्षान्तर जनसंकुल स्थान) के विनाश का कारण केतुस्वरूप,

व्यस्तवस्त्र, 'चिटिवस्त्र' नामक यह राजसभा का भट्ट (अध्यक्ष) वर्गी से जा रहा है ॥ २६ ॥

उच्चैश्चिरात्सौधनिषक्तदृष्टिरश्वाधिरूढः कमलोऽधिकारी ।

कलावति त्वामयमीक्षमाणः शूलार्पिताकारतुलां बिभर्ति ॥ २७ ॥

हे कलावति ! बहुत देर से ऊँचे प्रासाद पर अपनी दृष्टि को निश्चल रूप से लगाये हुये, घोड़े पर सवार, 'कमल' नामक यह राज्याधिकारी तुम को देखता हुआ शूली पर लटके हुये व्यक्ति की तुलना को धारण कर रहा है अर्थात् तुम्हारी ओर ऊँचे देखने के कारण शूली पर लटका हुआ सा प्रतीत हो रहा है ॥ २७ ॥

श्रीखण्डोज्ज्वलमल्लिकातिलकवानस्थूलहेमाङ्गद-

स्छिन्नश्लिष्टविनष्टनासिकतया प्रख्यातजारज्वरः ।

एष त्वामवलोक्य मालवपतेर्दूतः प्रपञ्चाभिधः

पश्योदवेष्टविवेष्टनानि कुरुते भोगीव मन्त्राहतः ॥ २८ ॥

देखो, श्रीखण्ड (मलय पर्वत में समुत्पन्न चन्दन खण्ड) के समान उज्ज्वल मल्लिका (चमेली, वेला का एक पुष्पभेद) की माला एवं चन्दन को धारण किये हुये, सुवर्णनिर्मित मोटे अङ्गद (बाजूबन्द) को पहने हुये, कटी हुई एवं पुन: जोड़ी गई नासिका के विनष्ट हो जाने के कारण प्रसिद्ध भयङ्कर जार, 'प्रपञ्च' नामवाला, मालवपति का यह दूत तुम्हें देख कर, मन्त्र से वश में किये गये सर्प की भाँति, अपने उष्णीष के ढीले बन्धन को सँभाल कर बाँध रहा है ॥ २८ ॥

एष प्रख्यातवृत्तः कपटविटघटानर्मकर्मप्रगल्भः

श्रीगुप्तो नाम धूर्तः सकलकलिकलाकल्पनामूलदेवः ।

दृष्ट्वा दूरात्प्रसिद्धां तव जननीमञ्जलिश्लिष्टहस्तः

पश्याक्ष्णा दत्तसंज्ञः स्मितचलचिबुकः स्तोतुमेतां प्रवृत्तः ॥२९॥

इधर देखो, अपनी जार्तरचना के लिये प्रसिद्ध, कपटी विटों की

अपार भीड़ में भी मज़ाक करने में प्रगल्भ, कलियुग की सफल कलाओं की कल्पना का मूल प्रवर्तक अर्थात् कलियुगी कलाओं का कालिदास, मुस्कराहट के कारण चञ्चल ठोढ़ी (चिबुक) वाला, 'श्रीगुप्त' नामक यह धूर्त दूर से ही तुम्हारी प्रसिद्ध नूतन माता को देखकर, हाथ जोड़े हुये, कुछ इङ्गित (इशारा) करके इनकी स्तुति करने में लगा हुआ है ॥ २६ ॥

पातालोत्तालवालुप्रविततवदनस्पष्टदृष्टोग्रदंष्ट्रा
विश्वग्रासावहेलाकुलितशिखिशिखाविभ्रमोद्भ्रान्तजिह्वा ।
मेषाणां चण्डमुण्डाहरणकटकटारावपिष्टास्थिसंस्था
सिद्धा शुष्कातिपूर्णा जयति भगवती कुट्टनी चण्डघण्टा ॥३०॥

पाताल की भाँति विस्तृत एवं भयङ्कर तालु के कारण फैले हुये तथा विस्तीर्ण मुख में स्पष्ट दिखलाई पड़ रहा है उग्र दाँत जिसका, विश्व को ग्रासरूपी क्रीडा (अवहेला=तिरस्कार=क्रीडा) में चञ्चल, लपलपाती हुई अग्नि की शिखा की भाँति भयङ्कर निकलकर फड़फड़ा रही है जिह्वा जिसकी, मेषों (भेड़ों) के कटने से रक्तस्राव आदि के कारण भयङ्कर मुण्डों के ग्रहण करने से अथवा ग्रहण करने के समय शरीर की हड्डियों को पीस देता है—हिला देता है—कटकटा शब्द जिसका, ऐसी, सिद्धिप्रदात्री, शुष्का अर्थात् कठोर हृदयवाली, अत्यन्त-पूर्ण, भयङ्कर घण्टावाली, भगवती कुट्टनी विजयिनी हो रही है ॥ ३० ॥

एष स्फीतधनस्य लोभवसतेः पापस्य मूर्तिस्पृशः
शङ्खाख्यस्य महार्घहट्टवणिजः पङ्काभिधानः सुतः ।
आकृष्टः प्रतिवेश्मनिर्गतविटैः सारङ्गमुग्धः शिशुः
सुभ्रु त्वां तुषराशिलोलचटकाकारः समुद्वीक्षते ॥ ३१ ॥

हे सुन्दर भ्रुकुटिवाली वेश्ये ! महाधनी, लोभ के घर, पापी, मूर्ति का स्पर्श करनेवाले अथवा पाप की मूर्ति का स्पर्श करनेवाले, बहु-मूल्यवस्तुओं के विक्रेता 'शङ्ख' नामक वणिक् का किशोर, 'सारङ्ग'

नामक वाद्य से मुग्ध अथवा हरिण की भाँति भोला भाला 'कङ्क' नाम धारी पुत्र, प्रत्येक वेश्याओं के घरों से निकले विटों (कामुकों) के साथ आकृष्ट हुआ अत तुष (भूसी) की ढेर को देखकर चञ्चल चटक पक्षी की अवस्था को प्राप्त होकर तुम को एक टक देख रहा है, अर्थात् जैसे चटक पक्षी तुषराशि को देख देख कर पुलकित तथा आकृष्ट होता है उसी प्रकार यह किशोर भी तुम्हें देख कर आकृष्ट हो रहा है ॥ ३१ ॥

टिप्पणी—महाकवि के द्वारा यहा पर तुष एव चटक की उपमा देने का अर्थ यही है कि वेश्याओं का सौन्दर्य तुष की भाँति नि सार और उसकी ओर आकृष्ट होनेवाला व्यक्ति चटक पक्षी की भाँति विवेकशून्य हुआ करता है।

एष निधिर्विधिना तव नूनं मेषमतिर्विहितः प्रहितो वा ।

स्थूलमुखः पृथुचूलकलापः स्कन्धयुगाश्रितकर्णसुवर्णः ॥ ३२ ॥

मेषमति अर्थात् भेंड की भाँति विवेकशून्य तथा अन्य व्यक्तियों का अन्धानुकरण करनेवाला, चौडा एव मोटे मोटे गालों से भरपूर मुख वाला, शिर में बडे बडे बालों को धारण करनेवाला, कन्धों तक लटकने वाले सुवर्ण निर्मित कर्णभूषणों को पहने हुये निधि स्वरूप यह व्यक्ति निश्चय ही विधाता के द्वारा, भाग्यवशात् तुम्हारे लिये भेजा गया है ॥ ३० ॥

इत्यादि कङ्केन वितर्क्यमाणं वणिक्सुतं दृक्पतितं विचार्य ।

मनोरथाभ्यर्थितलाभतुष्टा कङ्कालिका सस्मितमित्युवाच ॥ ३२ ॥

'कङ्क' नामक नापित के द्वारा इस प्रकार से अनुमान किये गये दृष्टिगत उस वणिक्पुत्र के विषय में विचार करके मनोरथ के द्वारा वाञ्छित लाभ से प्रसन्न होकर कङ्क का मित्र वह कुट्टिनी मुस्कराकर के ऐसा बोली ॥ ३२ ॥

निर्यत्ताम्बूलताललवसललकलद्भीविनत्वानलोकी
रक्तोपानद्युगोद्यत्सरमरमुखरप्रस्खलत्पादचारः

एवंरूपोऽतिमुग्धः शिशुरखिलधनावाप्तये वन्धकीना-
मक्लेशाराधनार्हः स्वयमुपनमति प्रायशः पण्यपुण्यैः ॥ ३४ ॥

निकलने वाले पान के लार के कनों से चितकबरे, मुड़नेवाले ग्रीवा (गर्दन) एवं मुख का अवलोकन करनेवाला, लाल वर्ण के जूते की जोड़ी पहनकर 'सर सर' शब्दायमान तथा लड़खड़ाने वाले डगों से चलकर आया हुआ, इस प्रकार का अत्यन्त भोला भाला, सम्पूर्ण धन की प्राप्ति के हेतु वेश्याओं के लिये बिना कष्ट के ही वश में करने के योग्य यह किशोर प्रायशः वेश्याओं के पुण्य के कारण ही स्वयं प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥

कलावति त्वन्मुखनिश्चलोऽयं महाविटश्चारणचक्रचारैः ।
निवेदितोऽग्रे तव देवतायाः शिशुः पशुर्भोगविभूतिकामैः ॥ ३५ ॥

हे कलावति ! तुम्हारे मुख को एकटक देखनेवाला, भोगरूपी सौख्य की कामनाओं से, चारणरूपी तुम्हारे गुप्तचरों के द्वारा (वेश्यायें धनिकों को बुलाने के लिये अपने दूतों को छोड़ती हैं) यह शिशुरूप पशु देवता सदृश तुम्हारे सामने (बलि होने के लिये) निवेदित है ॥ ३५ ॥

पार्श्वे त्वमेषां व्रज कङ्क तूर्णं दूतं करिष्यन्ति भवन्तमेते ।
तयेति दत्तोचितशासनोऽसौ जगाम सौधादवरुह्य हृष्टः ॥ ३६ ॥

इति श्रीक्षेमेन्द्रविरचितायां समयमातृकायां षष्ठः समयः ।

हे कङ्क ! तुम अतिशीघ्र इन लोगों के पास जाओ । ये लोग वेश्या (कलावती) से मिलने के लिये तुमको दूत बनायेंगे । उस कुट्टिनी के द्वारा, इस प्रकार से भलीभाँति निर्देश किया गया वह नापित प्रसन्नतापूर्वक उस पक्के महल से उतर कर उन लोगों के पास गया ॥ ३६ ॥

श्री क्षेमेन्द्र के द्वारा विरचित 'समयमातृका' का षष्ठ समय समाप्त हुआ ।

सप्तमः समयः

अथाययौ शनैः श्रीमान्नवोद्भूतमनोभवः।
लतालिङ्गनकृद्वालः कालः कुसुमलाञ्छनः॥ १॥

इसके अनन्तर, शनैः शनैः शोभा से सम्पन्न, नवीन कामदेव का उत्पादक, लताओं का आलिङ्गन करने वाला, बाल अर्थात् अतिशीघ्र का ही प्रारम्भ वसन्त का समय आया॥ १॥

संभोगसुखसंपत्तिः पराधीनेव कामिनाम्।
आललम्बे धनेशाशामितीवाकलयन्रविः॥ २॥

कामिजनों की सभोग-जनित सुख-सम्पत्ति पराधीन सी है। इस बात का ही मानों विचार करते हुये भगवान् भास्कर धनाधिप कुबेर की दिशा का आश्रयण किये अर्थात् उत्तरायण हुये॥ २॥

दक्षिणानिलसोच्छ्वासा लसत्कुसुपाण्डुराः।
जातजृम्भा ययुस्तन्व्यो लताः सोत्कण्ठतामिव॥ ३॥

दक्षिण दिशा से प्रवहमान वायुरूपी उच्छ्वास को लेनेवाली, खिले हुये पुष्पों से श्वेत शरीरवाली, विकास को प्राप्त हुई पतली लताएँ उत्कण्ठित स्त्री (पति, विरहिणी स्त्री) की अवस्था को प्राप्त हुई॥ ३॥

टिप्पणी—पतिवियोगिनी, कामपरवश स्त्री बड़े बड़े उच्छ्वासों को लेती है। उसका शरीर श्वेत हो जाता है और वह बारम्बार जँभाई लेती है तथा उसका शरीर भी क्षण हो जाता है।

दग्धेऽन्धकद्विषा रोषात्पुराणे पञ्चसायके।
नवं निर्ममे कामसृतुराजः प्रजापतिः॥ ४॥

अन्धक नामक राक्षसराज के हन्ता भगवान् शङ्कर के द्वारा क्रोधवश प्राचीन कामदेव के जला देने पर प्रजापति (सृष्टिकर्त्ता) ऋतुराज वसन्त ने नवीन काम का निर्माण किया है॥ ४॥

प्रस्खलत्कोकिलालापा गायन्त्यो भृङ्गशिञ्जितैः ।
वेश्या इव मधुक्षीबा विरेजुर्वनराजयः ॥ ५ ॥

कोकिल के कूकों से संयुक्त भ्रमरों के गुञ्जार के माध्यम से गान करनेवाली, पुष्परसों से भरपूर वनों की पंक्तियाँ कोकिल की भाँति आलाप लेनेवाली, भ्रमर-शब्द के समान मधुर, मद्धीन शब्दों से गानेवाली मदिरा से मत्त वेश्याओं की भाँति सुशोभित हुई ॥ ५ ॥

नवकिसलयलेखापङ्क्तिमङ्के लतानां
नखमुखलिपिलीलालोभिनीमाकलय्य ।
मधुमदपरिरम्भे भेजिरे लोहितत्वं
स्थलकमलवनानामीर्ष्ययेवाननानि ॥ ६ ॥

युवतियों को नख के अग्रभाग से (कोमल कोमल पत्तों पर) अक्षर लिखने की शौकीन जानकर, वसन्त ऋतु की मादकता के चतुर्दिक् प्रसरित होने पर अथवा वसन्त के द्वारा उन्मत्ततापूर्वक आलिङ्गन करने पर अथवा वसन्त की मादकता का अङ्गीकार करने पर, नूतन किसलय (कोंपल) समूह को धारण करने के साथ ही लताओं के मुख स्थलकमल के वन की ईर्ष्या से ही मानो लाल हो गये ॥ ६ ॥

स्त्रैण्यक्षामं शिशिरसमयं वृद्धमुत्सृज्य दूरे
त्यक्त्वा शीतं तरुणमकठोरागानुबन्धम् ।
उद्यानश्रीर्मधुमभिमतं बालमेवालिलिङ्ग
प्रायः स्त्रीणां वयसि नियतिर्नास्ति कार्यार्थिनीनाम् ॥ ७ ॥

उद्यानश्री ने (बगीचे की शोभा ने) क्षीणता के कारण दुर्बल एवं वृद्ध शिशिर समय को दूर छोड़कर, धीरे धीरे प्रगाढ़ प्रेम से संवलित तरुण शीत को भी त्याग करके बाल्य अवस्था में ही वर्तमान अर्थात् अचिरप्रवृत्त, अभिमत वसन्त ऋतु का ही आलिङ्गन किया। कार्यसाधिका (संभोगरूपी कार्य को सिद्ध करनेवाली) स्त्रियों की प्रायः अवस्था के बारे में कोई सीमा नहीं रहती ॥ ७ ॥

अथ नापितदूतेन कृतद्विस्त्रिगतागता ।
मिथ्या कृतनिषेधापि ग्रहणाग्रहणे शिशोः ॥ ८ ॥
कथंचिदभ्यर्थनया गृहीतार्था कलावती ।
संध्यायां मज्जनासक्ता ययौ स्नानकसज्जताम् ॥९॥(युगलकम्)

दूत का कार्य करनेवाले नापित ने बाहर से दो-तीन बार घर के भीतर कलावती के पास आना-जाना किया। यद्यपि कलावती उस किशोर वणिक्पुत्र के समागम के लिये स्वीकार अथवा अस्वीकार के विषय में मिथ्या निषेध कर रही थी, किन्तु किसी किसी प्रकार से उस किशोर के प्रयोजन को स्वीकार करके कलावती ने संध्या के समय अपने शरीर के स्नान समारोह में संलग्न हो करके वस्त्र आदि से सज्जित हुई ॥ ८-९ ॥

कपोले कस्तूरीस्फुटकुटिलपत्राङ्कुरलिपि-
र्ललाटे कार्पूरं तिलकमलकालीपरिसरे ।
तनौ लीना हेमद्युतिपरिचिता कुङ्कुमरुचिः
न तस्याः कोऽप्यासील्ललितमधुरो मज्जनविधिः ॥१०॥

कलावती के कपोल पर कस्तूरी से बनायी गयी स्पष्ट तथा टेढ़ी पत्रों तथा अङ्कुरों का रचना की गयी थी। ललाट पर सिर के बालों की पंक्ति के समीप में कर्पूर का तिलक लगा था। शरीर में सुवर्ण के समान कान्तिवाले कुङ्कुम का पतला लेप था। पर उसकी कोई कमनीय ललित, मधुर प्रकार से अपने को नहाने की विधि थी ॥ १० ॥

प्रौढकामुकसंभोगसाहसिनी बालसंगमे ।
नोचितास्मीति तामूचे लज्जया नतमेखला ॥ ११ ॥

नितम्ब की स्थूलता के कारण विनम्र करधनीवाली, कलावती ने लज्जापूर्वक अपनी नवागता माता से कहा—"प्रौढ कामुकों के साथ

सम्भोग करने वाली मैं बालक (किशोर) के साथ संयोग करने के योग्य नहीं हूँ" ॥ ११ ॥

हारिणी सा तनुलता हारिणी च कुचस्थली ।
दृष्टिश्च हारिणी तस्या बभौ स्मरविहारिणी ॥ १२ ॥

कलावती की लता के समान पतली शरीर मनोहारिणी थी। उसके मोटे स्तन लुभावने थे और हरिणी के समान उसकी आँखें भी सुन्दर थीं। इस प्रकार इन मनोहर अङ्गों से संयुक्त वह कामिनी कामदेव की विहारस्थली थी ॥ १२ ॥

अत्रान्तरे वणिक्सूनुर्विवेश गणिकागृहम् ।
आसन्नलाभाभिमुखैरावृतं क्षेत्रवासिभिः ॥ १३ ॥

इसी बीच जब कि कलावती अपने को सजा चुकी थी, शीघ्र ही प्राप्त होने वाले द्रव्य के लिये तत्पर, कलावती के साथ घर में निवास करने वाले समाजियों के द्वारा घिरा हुआ वह वणिक्पुत्र उस गणिका के घर में प्रविष्ट हुआ ॥ १३ ॥

कर्णसंसक्तमुक्ताङ्ककनकस्थूलवालकः ।
बहुहेमभराक्रान्तिसव्यथश्रवणद्वयः ॥ १४ ॥

उसके कानों में मोतियों से जड़ी हुयी मोटी मोटी सोने की बालियाँ लटक रही थीं। उसके दोनों कान अत्यधिक सुवर्ण के भार के लटकने से पीड़ा दे रहे थे अर्थात् उसके सोने के कर्णाभूषण पर्याप्त वजनी थे ॥ १४ ॥

कण्ठाभरणमध्यस्थहेमरक्षाचतुष्टयः ।
जननीहस्तनिन्यस्तसर्षपाङ्कितचूलिकः ॥ १५ ॥

उसके गले के आभूषण के मध्य में सोने के बने हुये चार यन्त्र अथवा मूर्तियाँ (जिनसे बालक की रक्षा की कल्पना की जाती थी) थीं। उसकी शिर पर लगी कलँगी माता के द्वारा अपने हाथ से रखे गये सरसों से अङ्कित थी अर्थात् उसकी कलँगी में सरसों लगे हुये थे ॥ १५ ॥

टिप्पणी—किसी की बालक के ऊपर नजर न लग जाय इस लिये मातायें बालकों के बाल अथवा कलंगी में सरसों लगा देती थीं।

राजावर्तमणिस्थूलगुलिकाभ्यां विराजितम्।
राजतं चरणालीनं बिभ्राणः कटकद्वयम्॥ १६॥

वह राजावर्त नामक मणियों की बड़ी बड़ी गोलियों से सुशोभित चाँदी के दो कड़े को अपने पैरों में पहने हुये था। ये कड़े उसके पैर को कस कर पकड़े हुये थे॥ १६॥

मुहुर्दीर्घोज्ज्वलदशां स्रस्तां संकलयन्पटीम्।
बहुचूर्णकताम्बूलदग्धास्यकृतसीत्कृतः॥ १७॥

चौड़े किनारे वाले, बारम्बार खिसकते हुये उत्तरीय (दुपट्टा) को वह सँभाल कर धारण कर रहा था। पान में चूना अधिक होने के कारण उसके मुख के भीतर कट गया था, जिससे वह रह रह कर 'सी सी' करता था॥ १७॥

स प्रविश्य प्रकाशाशां ददर्शादर्शमादरात्।
कलावतीं कलाकान्तललितामिव शर्वरीम्॥ १८॥

कलावती के घर में प्रविष्ट होकरके उसने पूरब की ओर आदर-पूर्वक दर्पण और उसके सामने स्थित कलावती को 'चन्द्रमा से उद्भासित रात्रि की भाँति' देखा॥ १८॥

कथं लालनयोग्योऽयं बालः संभोगभाग्भवेत्।
इतीव तारहारेण सस्मितस्तनमण्डलात्॥ १९॥

दुलार करने के योग्य यह बालक किस भाँति सम्भोग का पात्र, होगा? मानो यही बात स्थूल हार के माध्यम से स्मित करने वाले स्तन-मण्डल से अभिव्यञ्जित हुई है॥ १९॥

द्रविणक्षयदीक्षाया विचक्षण्यकृतक्षणाः।
ऋत्विजः सप्त विविशुः पुरस्तस्य महाविटाः॥ २०॥

धन के विनाशरूपी दीक्षा में अपनी विचक्षणता से आनन्द करने वाले अथवा उन्मद मनाने वाले सात ऋत्विग् (होता, उद्गाता, अध्वर्यु, ब्रह्मा आदि यज्ञ-संचालक) रूप महाविट उस बालक के सामने प्रवेश किये ॥ २० ॥

निर्गुंडः क्षीणसाराख्यो दिविरः कमलाकरः ।
रेचको भरताचार्यः क्षुण्णपाणिस्तुलाधरः ॥ २१ ॥
गणकः सिंहगुप्तश्च तिक्तनामा भिषक्सुतः ।
कटिः कुटिलकश्चेति भोगाम्भोरुहषट्पदाः ॥ २२ ॥

उस सातों का नाम एवं परिचय इस प्रकार है :—क्षीणसार नामक निर्गुंड, कमलाकर नामक दिविर, भरताचार्य रेचक, हथकटा तुलाधर (तराजू से तौलने वाला), सिंहगुप्त नामक गणक (ज्योतिषी अथवा लेखा-कर्मचारी), तिक्त नामवाला वैद्य का लड़का, कुटिलकटि—ये सात भोगरूपी कमल के भ्रमर हैं । २१-२२ ॥

वेश्यासमागमे शैलीं शिक्षितः स विटैर्बहिः ।
प्रविश्य कामिनीपार्श्वे प्रौढवत्समुपाविशत् ॥ २३ ॥

बाहर उन विटों ने उस बालक को वेश्या के साथ समागम का तरीका बतलाया । इसके बाद कलावती के घर में प्रवेश करके वह बालक उसके पास प्रौढ व्यक्तियों की भाँति बैठ गया ॥ २३ ॥

वाससाच्छाद्य नासाग्रमप्रस्तावकटूत्कटाम् ।
नर्मगोष्ठीं स विदधे शिक्षितां शुकपाठवत् ॥ २४ ॥

जिस प्रकार शिक्षित किया गया शुक बिना प्रसंग के भी एक ही बात का पाठ करता है, उसी प्रकार वह बालक वस्त्र से कलावती के आधे नाकपर्यन्त मुख को ढक कर बिना अवसर के ही कटु लगने वाले उत्कट हँसी मजाक को किया ॥ २४ ॥

ततः प्रविश्य कङ्काली गृहीतोपचरापरा ।
रञ्जनाय पुरस्तस्य विटानां कपटस्तुतिम् ॥ २५ ॥

इसके अनन्तर उस कक्ष में प्रवेश करके तथा ऊँचे आसन पर विराजमान हो कङ्काली (नवागत माता) ने विटों को प्रसन्न करने के लिये उनके सामने ही उनकी कपट-स्तुति करना प्रारम्भ किया ॥ २५ ॥

धन्योऽयं बालकः श्रीमान्भवद्भिर्यस्य संगतिः ।
युष्मत्परिचयः पुण्यपरिपाकेन लभ्यते ॥ २६ ॥

सम्पत्ति एवं शोभा का पात्र यह बालक धन्य है, जिसकी आप लोगों के साथ संगति है। निश्चय ही आप लोगों की संगति (साथ) पुण्य के परिणाम स्वरूप उपलब्ध होती है ॥ २६ ॥

शिशुरप्ययमस्माकं कामुकोऽभिमतः परम् ।
बाल एव सहस्रांशुः कमलिन्या विकासकृत् ॥ २७ ॥

कामुक यह बालक भी हम लोगों को बहुत अधिक प्रिय है। सूर्य अपनी बाल्यावस्था में ही कमलिनी का विकास करने वाला होता है ॥ २७ ॥

इत्यादिभिः स्तुतिपदैः कुट्टन्या विटमण्डले ।
स्वीकृते भूरभूल्लिप्तं ताम्बूलावेलपाटला ॥ २८ ॥

उपर्युक्त प्रकार से कहे गये प्रशंसावचनों से उक्त वृद्धा ने विट-मण्डल को अपना बना लिया। कङ्काली के बोलने के समय उसके मुख से निकले हुये पान के रस से मिश्रित थूक के कणों से वहाँ की जमीन लाल हो गई थी ॥ २८ ॥

ततः काली कलावत्या धात्री वेतालिकाभिधा ।
ताम्बूलदानावसरप्रहर्षाकुलितावदत् ॥ २९ ॥

तदनन्तर कलावती की 'वेतालिका' नामवाली कृष्णवर्णा धाई ने पान देने के समय अत्यन्त हर्ष से आकुल हो कर बोली ॥ २९ ॥

अत्यल्पः परिवारोऽयं ताम्बूलप्रणयी स्थितः ।
नास्माकमन्यवेश्यानामिवासंख्यः परिग्रहः ॥ ३० ॥

पान खाने का आदी, यह अत्यधिक अल्प परिवार यहाँ पर स्थित है। हम लोग अन्य वेश्याओं की भाँति असत्य अर्थात् बहुत से व्यक्तियों का संग्रह नहीं करती हैं ॥ ३० ॥

कङ्कः प्रथमपूज्योऽयं देवाकृतिरुदारधीः ।
यस्यानुरोधात्सुलभा दुर्लभापि कलावती ॥ ३१ ॥

देवताओं की तरह आकृति वाले अर्थात् दिव्यशरीरधारी उदार बुद्धि वाले यह 'कङ्क' सर्वप्रथम स्वागत करने के पात्र हैं, जिनके अनुरोध के कारण दुर्लभ भी कलावती सुलभ हुई है ॥ ३१ ॥

जामाता गौरवार्होऽयं पूज्यः कन्यार्पणेन नः ।
शाङ्खिकः कमलो नाम संमानं पूर्वमर्हति ॥ ३२ ॥

(बालक की ओर संकेत करके) गौरव के पात्र यह जामाता (दामाद) कन्या (कलावती) को देकर हमलोगों के पूजा के योग्य है। कमल नामक यह शाङ्खिक (शङ्खाधिपति अथवा शङ्ख का व्यापारी) भी प्रथम सम्मान के भाजन हैं ॥ ३२ ॥

अयं पितुः कलावत्याः प्रेतकार्यप्रतिग्रही ।
ह्यः पर्वदिनमायात शक्तिर्महानन्दी ॥ ३३ ॥

यह व्यक्ति भी कलावती के पिता के प्रेतकार्य (पिण्डदान, श्राद्ध आदि) को सम्पन्न करने वाले हैं। ये बड़े बड़े श्राद्धों को करने वाले हैं। इन्होंने अभी कल ही पर्व के दिन महासिद्धि (बहुत बड़ी सिद्धि) को प्राप्त किया है ॥ ३३ ॥

अयं स्थलपतेः सूनुः कपिलः कलशाभिधः ।
गुरुश्चास्याः कलावत्याः कल्पपालो मधुप्रदः ॥ ३४ ॥

यह कपिल वर्ण वाले व्यक्ति स्थलसेनाध्यक्ष के पुत्र हैं। इनका नाम (कलश) है। मदिरा प्रदान करने वाले ये 'कल्पपाल जी' कलावती के गुरु रहे हैं ॥ ३४ ॥

मृदङ्गोदरनामायं कलावत्याः स्वसुः पतिः ।
मातुलः कलहो नाम बिन्दुसारः सहोदरः ॥ ३५ ॥

यह 'मृदङ्गोदर' नाम के व्यक्ति कलावती की बहन के पति हैं और यह 'कलह' नाम के महाशय मामा हैं तथा 'बिन्दुसार' सहोदर भाई हैं ॥ ३५ ॥

इयं दत्तकपुत्रस्य कलावत्याः कलायुषः ।
धात्री कलावती नाम रूणचन्द्रश्च तत्पतिः ॥ ३६ ॥

यह कलावती के दत्तकपुत्र (गोद लिया गया पुत्र) 'कलायु' की धात्री (धाई) कलावती है और इनका पति 'रूणचन्द्र' है ॥ ३६ ॥

अयं भरतभाषाज्ञः साम्बो भागवतात्मजः ।
गायनः स्वरदासोऽयं महामात्यस्य वल्लभः ॥ ३७ ॥

यह नाट्याचार्य भरत की भाषा (नाट्यशास्त्र) का ज्ञाता 'भागवत' नामक व्यक्ति का पुत्र अथवा परमेश्वर का पुत्र 'साम्ब' है। यह राजा के महामन्त्री का मित्र गायक 'स्वरदास' है ॥ ३७ ॥

टिप्पणी—महाकवि ने किसी गायक के लिये 'स्वरदास' यह बड़ा ही उपयुक्त नाम रक्खा है। 'स्वरदास' के माने होते हैं—तन्मयता के साथ स्वरों की आराधना करने वाला अथवा स्वरों का बहुत बड़ा पण्डित, स्वर जिसके दास के समान अनुवर्तन करते हैं।

निगिलः सूपकाराग्र्यः कुम्भकारश्च कर्परः ।
बकश्छत्रधरश्चायं सज्जनो युग्यवाहनः ॥ ३८ ॥

'सूपकार' नामक यह निगिल (सब कुछ खाने वाला) है। यह 'कर्पर' (पात्र का टूटा हुआ टुकड़ा) नामक कुम्भकार है। राजा के अथवा कलावती के पीछे पीछे छत्र (छाता) पकड़ कर चलने वाला यह 'बक' (बकुला) है और यह बग्गी खींचने वाला 'सज्जन' है ॥ ३८ ॥

रतिशर्मा द्विजन्मायं गणिकागृहशान्तिकृत् ।
आरामिकः करालोऽयं कीलनर्तश्च नापितः ॥ ३९ ॥

यह 'रविशर्मा' नाम के ब्राह्मण हैं। इनका कार्य है वेश्याओं के घरों को शान्त करना। यह उद्यान में रहने वाला 'कराल' है और यह 'कोलवर्त' नाविक (मल्लाह) है ॥ ३९ ॥

उद्यानपालः कन्दोऽयं मुकुलाख्यश्च पौष्पिकः ।

चर्मकृद्वर्मदत्तोऽयं मारच्छिद्रश्च धावकः ॥ ४० ॥

यह उद्यानरक्षक 'कन्द' है तथा यह 'मुकुल' नामक व्यक्ति पुष्पों की देख भाल करने वाला है। यह चमड़े का काम करने वाला 'वर्मदत्त' है। यह 'मारच्छिद्र' नामक धावक (एक स्थान से दूसरे स्थान में सन्देश आदि पहुँचाने वाला व्यक्ति) है ॥ ४० ॥

बहिरान्ते च चाण्डाली क्रोशन्ती घर्घराभिधा ।

डोम्बश्चण्डरवाख्यश्च कोष्ठागारप्रहारिकः ॥ ४१ ॥

घर के बाहर 'घर्घरा' नामवाली चाण्डाली आक्रोशपूर्वक चिल्लाती हुई खड़ी है। वहीं पर कोष्ठागार (स्टोर हाउस, स्टोर रूम) पर प्रहार करने वाला—धावा बोलने वाला 'चण्डरव' नामक डोम भी वर्तमान है ॥ ४१ ॥

ताम्बूलं देयमेतेभ्यः प्रदेयं प्रातरेव तु ।

सख्यै शम्बरमालायै गुरवे दम्भभूतये ॥ ४२ ॥

इन सब लोगों को ताम्बूल देना चाहिये और अतिशीघ्र अथवा प्रातःकाल सखी 'शम्बरमाला' एवं गुरु 'दम्भभूति' के पास भेजना चाहिये ॥ ४२ ॥

उक्त्वेति पूगफल्लुण्ठिनिविष्टचित्ता

वैतालिका विविधवेशवनीप्रविष्टाः ।

चक्रुः प्रभूतमधुपानविघूर्णमाना-

स्ताम्बूलदानबहुमानगनागतानि ॥ ४३ ॥

ऐसा कह करके अर्थात् ऐसा कहने के अनन्तर अथवा इसीप्रकार की बात कह करके पूगफल (सुपाड़ी) लूटने में संलग्न चित्त वाले

विविध वेशनारियों के गृहों में प्रवेश करने वाले अथवा विविध वसातों से सुशोभित मधुगृह में प्रवेश करके वैतालिकजन अन्यन्य मदिरा पान से मतवाले हो परस्पर पान विनिमय करती सम्मान में कई बार इधर-उधर आना-जाना किये ॥ ४३ ॥

ततः क्षीबरसंनाद्यं कत्थनानैर्विदैः परम् ।
उद्वेलितेव रजनी धूपध्यानेन निर्ययौ ॥ ४४ ॥

नृपस्य बाहुर्युधि दक्षिणोऽहं ममैव राज्यं कलमान्तरस्थम् ।
मयि स्थिते तिष्ठति नाट्यशास्त्रं हसते तुला वित्तपतिश्रियं मे ॥४५॥

"मैं संग्राम में राजा का दाहिना हाथ हूँ अर्थात् प्रबल सहायक हूँ। सम्पूर्ण राज्य मेरी ही कलम के अधिकार में है अर्थात् मैं जो कुछ लिख देता हूँ वही होता है। मेरे रहने तक ही नाट्यशास्त्र जीवित है। मेरी तराजू कुबेर की लक्ष्मी—धन-सम्पत्ति का उपहास करती है ॥ ४५ ॥

त्रैलोक्यवृत्तं गणितेन वेद्मि मयैव भोजस्य कृता चिकित्सा ।
भुक्ता मया भूपतयः स्वयुक्तिभिरित्यूचिरे मद्यमदोद्धतास्ते ॥४६॥

मैं त्रिलोकी के समाचारों को अपनी गणित के द्वारा जानता हूँ। मैंने ही राजा भोज की चिकित्सा की थी। मैंने अपनी युक्तियों से बहुत से राजाओं को प्रसन्न कर उनकी सम्पत्ति का उपभोग किया है।" इसी प्रकार की बहुत सी बातें मदिरा से मतवाले उन लोगों ने की ॥ ४६ ॥

विसृष्टास्ते कलावत्या ताम्बूलार्पणलीलया ।
निर्ययुः कल्पयन्तोऽन्तर्मानिनी मोऽन्यतंवदन् ॥ ४७ ॥

ताम्बूल देने की लीला से कलावती ने उन लोगों को अपने यहाँ से विदा किया। वे लोग आगे (बालक से) मिलने वाली भोज्य-सम्पत्ति का परस्पर आकलन करते हुये गये ॥ ४७ ॥

अथ विततवितानं हंसशुभ्रोपधानं
शयनममलचीनप्रच्छदाच्छादिताग्रम्।
अभजत हरिणाक्षी क्षीबमादाय बालं
निजपरिजननर्मस्मेरवक्त्राम्बुजश्रीः ॥ ४८ ॥

उसके बाद अपने परिजनों के द्वारा की गयी हँसी-मज़ाक पर मुस्कराने से विकसित हो गयी है मुख-कमल की शोभा जिसकी ऐसी, हरिण की भाँति विशाल नेत्रवाली कलावती मदिरा से मत्त उस बालक को लेकर के पलंग पर लेट गयी। पलंग के ऊपर चँदोवा (वितान) फैला हुआ था। शिरहाने हंस के समान धवल तकिया रक्खी हुई थी तथा उसका ऊपरी भाग स्वच्छ सिल्क वस्त्र के चद्दर से आच्छादित था।।४८।।

शिशुतररमणेऽस्याः कौसुमामोदलुभ्यद्-
भ्रमरभरनिपातैर्घूर्णमानाः प्रकामम्।
प्रसरदगुरुधूमश्यामलाग्रा बभूवु-
र्वलितविरतवक्त्रा लज्जयेव प्रदीपाः ॥ ४९ ॥

इति श्रीक्षेमेन्द्रविरचितायां समयमातृकायां कामुकसमागमो नाम
सप्तमः समयः

अत्यधिक अल्पवयस्क बालक के साथ युवावस्था से मतवाली कलावती के रमण प्रारम्भ करने पर पुष्पमाला अथवा दीपक में पड़े सुगन्धित तेल के गन्ध के लोभी भौंरों के गिरनेसे-झपटनेसे अत्यधिक काँपनेवाले (लड़खड़ाती लौ वाले), घर में फैलने वाले अगुरु के धुएँ से श्यामल अग्रभागवाले दीपक मानो इस असम संयोग की लज्जा से ही अपने मुख को या तो घुमा लिये अथवा बुझ गये ॥ ४९ ॥

श्री क्षेमेन्द्र के द्वारा विरचित समय-मातृका का कामुकसमागम नामवाला यह सप्तम समय समाप्त हुआ।

अथ मितकिरणरतिश्रमखिन्नेव निनिद्रतारकारजनी ।
प्राभातिकसलिलकणस्वेदवती क्षामतां प्रययौ ॥ १ ॥

एतदनन्तर, चन्द्र के साथ रमण करने से थकी हुई सी, अत प्रात कालीन जल-कण अर्थात् ओस कण रूपी पसीनेवाली तथा अस्त-ङ्गत नक्षत्रों वाली रात्रि दुर्बलता (समाप्ति) को प्राप्त हुई ॥ १ ॥

टिप्पणी—प्रबल कामुक के द्वारा भोगी गयी रमणी भी खिन्न हो जाती है, उसके शरीर पर रतिश्रम के कारण पसीने की बूँदें उभर आती हैं, तथा वह निद्रावश आँखें मूदने लगती है और हो जाती है शिथिल भी। कवि ने यहाँ पर रात्रि की अवस्था के वर्णन से कलावती की अवस्था की सूचना दी है।

गणिका ततः प्रभाते सकलनिशाजागरेण ताम्राक्षी ।
रात्रिसुखप्रश्नपरां प्रोवाच समेत्य कङ्कालीम् ॥ २ ॥

रात्रि बीतने पर प्रात काल, रात्रिभर जागने से किञ्चित् लाल नेत्र वाली गणिका कलावती ने रात्रि के सुख के विषय मे पूछनेवाली 'कङ्काली' से उसके पास जाकर कहा '—॥ २ ॥

शृणु मातः शिशुवयसस्तस्य स्फुटवामरालपुटस्य ।
यस्याल्पकस्य बहुलं मरिचकणस्येव तीक्ष्णत्वम् ॥ ३ ॥

हे मात· ! छोटी मरिच की भाँति जिसमें अत्यधिक तीखापन है ऐसे, असमय में ही पुष्ट (सभोगाक्षम) शिशुअवस्थावाले उस बालक की प्रवीणता को सुनो ॥ ३ ॥

आरोपितः स चेटया खट्वामन्युन्नतां शनैः शिशुकः ।
निश्चलतनुर्मुहूर्तं धृतः स च छदकसुप्तोऽभूत् ॥ ४ ॥

चेटी के द्वारा धीरे से अति ऊँची शय्या पर चढ़ाया गया वह धूर्त बालक एक क्षण तक अपने शरीर को निश्चल करके बनावटी ढंग से सो गया ॥ ४ ॥

ललनासुलभकुतूहलचपलतयालिङ्गितः स्वयं स मया ।
तत्क्षणनवसुरतान्ते सहसा निश्चेष्टतां प्रययौ ॥ ५ ॥

ललनाओं में स्वभावत वर्तमान कुतूहल की चञ्चलता से मैंने स्वय उस बालक का आलिङ्गन किया। उस समय, जीवन में प्रथम-बार सम्भोग करने के अनन्तर सहसा वह निश्चेष्ट हो गया ॥ ४ ॥

पूगफलमस्य लग्नं ज्ञात्वेति मया स शीतसलिलार्द्रम् ।
दत्त्वा वक्षसि हस्तं प्रलयभयाल्लम्भितः संज्ञाम् ॥ ६ ॥

इस बालक को सुपाड़ी लग गयी है। ऐसा सोचकर मैंने, मर जाने के भय से, उसके वक्षस्थल पर ठण्डे जल से भीगे हुये अपने हाथ को रखकर उसे होश में लाया ॥ ६ ॥

लब्धास्वादः स ततश्चटकरतिर्मां प्रजागरो मूर्तः ।
खेदक्लान्तामकरोद्गणनातीतैः समारोहैः ॥ ७ ॥

उसके बाद, सम्भोग के आस्वाद को प्राप्त करके, चटकपक्षी (गौरैया अथवा लावा नामक पक्षी) की भाँति रति करनेवाला, मूर्तिमान् रात्रिका जागरणभूत, वह बालक अगणित सम्भोग मुद्राओं एव सम्भोगों से मुझे, सम्भोग मे होनेवाले परिश्रम से उद्भूत खेद से क्लान्त कर दिया अर्थात् थका दिया ॥ ७ ॥

बालमुखं तरुणतरं रभसरसेन प्रबोधयन्त्या तम् ।
कष्टं मयैव कृष्टो ज्वलिताङ्गारः स्वहस्तेन ॥ ८ ॥

आनन्दपूर्ण उत्कण्ठावश, मैंने बालमुख अर्थात् देखने में बालक प्रतीत होनेवाले किन्तु तरुणतर (पर्याप्त तरुण), अतः सम्भोग में कष्ट पहुँचाने वाले उस बालक को जगा दिया। मेरा यह जगाना क्या था, मानो मैंने ही अपने हाथ से प्रज्वलित अङ्गार खींच लिया हो ॥ ८ ॥

रोदिति शिशुरिति दयया यस्य न दशनलवं मया दत्तम् ।
तेन ममाधरबिम्बं पश्य शुकेनेव खण्डितं बहुशः ॥ ९ ॥

"बालक रोता है" ऐसा सोचकर दया के कारण मैंने जिसके मुख पर दशनक्षत (दाँत से काटना) नहीं किया, देखो, शुक की भाँति उसी बालक ने मेरे लाल लाल अधर को कई जगह काट दिया है ॥ ६ ॥

मुहुरारोहणहेलापरिरम्भैर्वामनीकृतं तेन ।
शिशुसंगमात्क्षणं मे लज्जितमिव नोन्ननाम कुचयुगलम् ॥ १० ॥

उस बालक के द्वारा बारम्बार आरोहण और कौतुकपूर्ण आलिङ्गनों से दबा कर छटा बनाये गये, शिशु के साथ सम्भोग करने से क्षण भर के लिये लज्जित की भाँति, मेरे दोनों स्तन उन्नत नहीं हुये ॥ १० ॥

अहमस्थाननखक्षतविक्षततनुवल्लरी परं तेन ।
गुप्तिं कथं करिष्ये विदग्धजनसंगमेऽङ्गानाम् ॥ ११ ॥

उस बालक के द्वारा अनुचित स्थानों में भी अर्थात् जहाँ-तहाँ नखों से अत्यधिक क्षत-विक्षत कोमल शरीर वाली मैं विदग्धजनों सामाजिकों के सहवास में अपने अङ्गों को कैसे छिपाऊँगी ? ॥ ११ ॥

उक्त्वेति वाररमणी निखिलनिशीथप्रजागरोद्विग्ना ।
क्षोणीं निरीक्षमाणा वैलक्ष्येण क्षणं तस्थौ ॥ १२ ॥

सम्पूर्ण रात्रि भर जागने से उद्विग्न, वह सुन्दरी वेश्या ऐसा कहकर लज्जा के कारण पृथिवी को देखती हुई अर्थात् नीची निगाह किये हुई एक क्षण तक खड़ी रह गई ॥ १२ ॥

तामवदत्कङ्काली सस्मितवदना विटङ्कदंष्ट्राभिः ।
भोगोद्भवे विटानां मनोरथं पाटयन्तीव ॥ १३ ॥

कङ्काली के मुस्काने से उसके ऊबड़ खाबड़ एवं बाहर की ओर निकले हुये दाँत स्पष्ट दिखलाई पड़ते थे। कलावती की सन्दोषित

करती हुयी तथा सम्भोग के अनन्तर होने वाले विटों के मनोरथों को विनष्ट करती हुयी उसने कहा ॥ १३ ॥

एवंविधैव मुग्धे परिशीलितहट्टचेटकटुकानाम् ।
प्रौढिः कण्टकनीक्ष्णा भवति परं पण्यजीवनशिशूनाम् ॥१४॥

हे मुग्धे ! नगर के चेटों (कामुकों) के सम्पर्क के कारण कटु, वेश्याओं की जीविका के आश्रयभूत बालकों की प्रौढ़ता (संभोग-निपुणता) इसी प्रकार से कण्टक की भाँति अत्यधिक तीक्ष्ण हुआ करती है ॥ १४ ॥

पितृभवनहृतं नियतं हस्तगतं विद्यते धनं तस्य ।
भवति न तद्विधमधिकं प्रागल्भ्यं रिक्तहस्तस्य ॥ १५ ॥

निश्चय ही उसके पास अपने पिता के घर से लाया गया पर्याप्त धन वर्तमान है अन्यथा खाली हाथ (धनरहित) व्यक्ति की उस प्रकार की सीमोल्लंघिनी प्रगल्भता नहीं होती है ॥ १५ ॥

बिलनिहितद्रविणकणश्चपलगतिर्मूषकोऽप्यलं प्लवते ।
दानक्षीणस्तन्द्रीं सुषिरकरः कुञ्जरो भजते ॥१६॥

अपने बिल में अन्न के दानों को एकत्रित करके रखने वाला मूषक भी काफी उछल-कूद करता है। दान (मदजल) से रहित अतः खाली छिद्रों से पूर्ण शुण्डादण्डवाला हस्ती भी निद्रितावस्था (अलसाई हालत) में रहता है अर्थात् चपलता शून्य हो जाता है ॥ १६ ॥

विटविनिवारणयुक्त्या निर्मक्षिकमाक्षिकोपमं सहसा ।
गत्वा करोमि तावत्तवोपजीव्यं वणिक्तनयम् ॥१७॥

सर्वप्रथम मैं सहसा जाकर, अन्य विटों को हटाने की युक्ति से एकान्त में जुआरी की भाँति उस वणिक्पुत्र को तुम्हारा उपजीव्य (जीविका का साधन) बनाऊँगी ॥ १७ ॥

अस्माकमङ्गमङ्गं पर्यापनतं महाधननिधानम् ।
दासीसुताः किमेते खादन्ति विटाः प्रसङ्गेन ॥ १८ ॥

पण्यभाव को प्राप्त अर्थात् अवक्रेतव्य (खरीदने के योग्य) हम वेश्याओं का प्रत्येक अङ्ग बहुत बडे धन का खजाना है। दासीपुत्र (यह एक प्रकार की गाली है) ये विट प्रसङ्ग से (सभोग से) क्या खाते हैं ? अर्थात् अपना ही धन खाते हैं ॥ १८ ॥

इत्युक्त्वा तूर्णतरं शय्याभवनस्थितं समभ्येत्य ।
शिशुमवदत्कङ्काली विजनकथाकेलितन्त्रेण ॥ १९ ॥

ऐसा कह करके बडी शीघ्रता से शय्या-भवन (सम्भोग घर) में स्थित उस बालक के पास जाकर के कङ्काली ने एकान्त में बात करने के योग्य रतिविलास की पद्धति से उससे कहना प्रारम्भ किया ॥ १९ ॥

अपि पुत्र रात्रिरखिला सुखेन ते कुमुदहासिनी याता ।
बन्धनयोग्योऽस्माकं कलावतीहृदयचोरस्त्वम् ॥ २० ॥

हे पुत्र ! कुमुदों के माध्यम से हास करने वाली अथवा कुमुद की भाँति धवल तुम्हारी यह सम्पूर्ण रात्रि सुखपूर्वक बीती है ? कलावती के हृदय को चुराने वाले तुम हम लोगों के द्वारा बाँध कर रखने के योग्य हो। अर्थात् तुम्हें जाने देने की हम लोगों की इच्छा नहीं होती ॥ २० ॥

टिप्पणी—कुमुदों के विकास की बात से महाकवि ने शरद् ऋतु की सूचना दी है।

ध्यानं वलनं जृम्भणमुच्छ्वसनं वेपनं परिस्खलनम् ।
त्वत्संगमेऽपि यस्याः किं कुरुते निर्गते त्वयि सा ॥२१॥

तुम्हारे साथ सयोग के समय भी जिस कलावती का ध्यान, वलन (करवट बदलना), जँमाई लेना, उच्छ्वास लेना, काँपना, लडखडाना आदि बातें हुआ करती हैं, वह तुम्हारे चले जाने पर क्या करेगी ? अर्थात् तुम्हारे चले जाने पर तो उसका जीना भी कठिन होगा ॥ २१ ॥

टिप्पणी—यहाँ यह स्मरणीय है कि पतिविरहिणी स्त्रियाँ ही अपने पति के अभाव में उसका ध्यान करती हैं, उसके लिये उत्कण्ठा के कारण निद्रा के

अभाव में करवटें बदला करती हैं, जँमाई लेती हैं, लम्बी लम्बी साँसें भरती है, काँपती तथा लड़खड़ाती हैं। किन्तु वृद्धा के अनुसार बालक के संयोग के समय ही जब कलावती की यह अवस्था है तो विरह में वह क्या करेगी, कहा नहीं जा सकता।

लङ्घिततरुणसमुद्रा कलावती यत्पटाञ्चले लग्ना।
यामर्थयते दूतैर्दक्षिणदिग्वल्लभो भोजः ॥ २२ ॥

तुम्हारे वस्त्र के अञ्चल में लिपटी हुई अर्थात् तुम्हारे सहवास में मग्न कलावती ने बहुत से आये हुए युवकों को अपने साथ सहवास का अवसर न देकर उनका तिरस्कार कर चुकी है। दक्षिण दिशा का शासक भोज भी अपने दूतों के द्वारा कलावती से सम्भोग के लिये प्रार्थना करता है॥ २२॥

जन्मान्तरेऽनुबद्धा यदि नेयं संगतिः कृता विधिना।
तत्किं त्वयि मम जाता परलोके पुत्रकार्याशा ॥ २३ ॥

विधाता ने यदि तुम्हारी और कलावती की संगति को जन्मजन्मान्तर से अनुबद्ध न किया होता तो मेरी परलोक में भी तुम्हारे द्वारा पुत्रकार्य (पिण्डदान आदि) की आशा क्यों जागृत होती ?, अर्थात् निश्चय ही तुम्हारा और कलावती का परस्पर प्रेम जन्म-जन्मान्तर का है। यही कारण है कि पुत्ररूप में मानती हुई मैं भी तुमसे मरणोपरान्त पिण्डदान आदि की आशा करती हूँ॥ २३॥

विघ्नस्तु संगमेऽस्मिन्नेकः परिचिन्तितोऽस्ति मे भयदः।
यदयं विटसंघातः कण्टकजालायते परितः ॥ २४ ॥

किन्तु इस संगम में मुझे एक ही भयदायी विघ्न दिखलायी पड़ रहा है। यह विघ्न यह है कि—काँटेदार जाल की भाँति विटों का यह बहुत बड़ा समूह चारों ओर वर्तमान है॥ २४॥

भुक्त्वा पीत्वा भवतः परधनवर्णाः स्वान्तिपरिहीणाः।
पूर्वास्त्वामेव पितुर्बन्धनयोग्यं प्रयच्छन्ति ॥ २५ ॥

अपने धन से हीन, दूसरे के धन से जीने वाले, धूर्त ये विट तुम्हारे धन को खा पीकर तुम्हें पिता के बन्धन (शासन) में ले जाकर कर देंगे ॥ २५ ॥

टिप्पणी—कुछ निर्धन विट धनी व्यक्तियों और उनके लड़कों को बहकाकर वेश्याओं के पास ले जाते हैं और उन वेश्याओं तथा उन लड़कों एवं व्यक्तियों से भी पैसा लेकर अपना कार्य चलाते हैं। पैसा समाप्त होने पर अथवा अपना स्वार्थ सिद्ध न होते देखकर वे शिकायत करके उन व्यक्तियों को उनके अभिभावकों के कठोर नियन्त्रण में रखवा देते हैं।

तस्माद्यदि दिनमेकं तिष्ठसि सुतरामदृश्यरूपस्त्वम् ।
तदयं कुटिलविटानां नैराश्याद्भ्रियते यूथः ॥ २६ ॥

अतः यदि तुम एक दिन तक पूर्णरूप से छिप कर यहाँ रहोगे तो निराश होकर के अपने आप कुटिल विटों का यह समूह यहाँ से चला जायगा ॥ २६ ॥

इत्युक्ते कुट्टन्या शैशवसरलाशयो वणिक्सूनुः ।
तामवदत्सत्यमिदं स्नेहान्मातस्त्वया कथितम् ॥ २७ ॥

कुट्टिनी के ऐसा कहने पर शैशव के कारण सरल स्वभाव वाले उस वणिक्पुत्र ने उससे कहा—"मातः! स्नेहवश जो तुमने कहा है वह पूर्ण सत्य है ॥ २७ ॥

अस्ति ग्रन्थिनिबद्धं मम किंचिज्जनकभाण्डशालाचम् ।
तदिदं गृहाण दुहितुर्मण्डनभोगव्यये योग्यम् ॥२८॥

पिता जी के भाण्डार-गृह अथवा बर्तन घर से ली गयी यह कुछ सम्पत्ति मेरी गाँठ में बँधी हुई है। अपनी पुत्री 'कलावती' की साज-सज्जा तथा खाने-पीने में व्यय के योग्य इसको तुम ले लो" ॥ २८ ॥

इत्युक्त्वा सारतरं दत्त्वा तस्यै शिशुर्गुरुद्रविणम् ।
तत्संदर्शितमविशच्छन्नपथं पृथुलहर्म्यवलभ्यग्रम् ॥ २९ ॥

ऐसा कह कर वह बालक अत्यन्त बहुमूल्य उस द्रव्य को उसे देकर

उसके द्वारा बतलाये गये, गुप्तमार्गवाले, अति ऊँचे महल के सर्वोच्च कोठे पर (ऊपरी तल्ले की कोठरी में) चला गया ॥ २६ ॥

तं प्रच्छाद्य महार्घं कृत्वा मिथ्या मुखं नरनिषादम् ।
अभ्येत्य विटानवदत्कङ्काली कलकलारम्भे ॥ ३० ॥

अत्यधिक प्रसन्न हुई कङ्काली ने उस द्रव्य को छिपा कर और अपने मुख को विषाद से परिपूर्ण अर्थात् उदास करके विटों के पास जाकर कोलाहल के मध्य उनसे कहा ॥ ३० ॥

आजन्मसहजसुहृदामस्मत्प्रणयोपचारतुष्टानाम् ।
उचितः किमयमकस्माद्भवतां निन्द्यः समाचारः ॥ ३१ ॥

जन्म से ही स्वाभाविक मित्र, हमारे प्रेमपूर्ण सेवा-सत्कार से सन्तुष्ट आप लोगों का, एकाएक, यह निन्द्य आचरण क्या उचित है ॥ ३१ ॥

दस्युसुतस्तीक्ष्णतरः स भवद्भिः किं वणिक्सुतव्याजात् ।
रत्नाभरणाकीर्णं प्रवेशितोऽस्मद्गृहं रात्रौ ॥ ३२ ॥

आप लोगों ने रात्रि में, वणिक् पुत्र के बहाने से क्या तीक्ष्णतर (अत्यन्त भयानक), रत्नजटित आभूषणों को धारण करनेवाला, कोई डाकू का पुत्र ले आकर प्रविष्ट करा दिया था ? ॥ ३२ ॥

अन्यगणिकाप्रयुक्ता यदि यूयं प्रहसनोद्यताः प्रसभम् ।
तत्किं स्त्रीवधसदृशं क्रियते पृथुसाहसं पापम् ॥ ३३ ॥

यदि हठात् दूसरी वेश्या के द्वारा प्रेरित होकर आप लोग हमारी हँसी करने के लिये तत्पर हैं; तो स्त्रीवध के सदृश, अत्यधिक साहस से परिपूर्ण यह पाप क्यों करते हैं ? ॥ ३३ ॥

स परं प्रभातनिद्रालसविरशायां क्षणं कलावत्याम् ।
आदाय हारसहितं केयूरयुगं गतः कामी ॥ ३४ ॥

वह कामी बालक केवल क्षण भर के लिये कलावती के प्रातः-

कालीन तन्द्रा से विवश हो जाने पर—अलसाकर सो जाने पर—इसके हार के साथ ही दोनों केयूर (बाजू-बन्द) को लेकर चला गया ॥३४॥

श्रूयन्ते प्रतिनगरं भूषणलुब्धैः पणाङ्गना निहताः ।
निजदेवताप्रसादात्कलावती किं तु मुक्ताद्य ॥ ३५ ॥

यह सुना जाता है कि प्रत्येक नगर में आभूषण के लोभी व्यक्तियों के द्वारा बेचारी वेश्यायें मारी जाती हैं। किन्तु आज तो कलावती अपने कुल देवताओं की कृपा से सुरक्षित बच गयी है ॥ ३५ ॥

तेन यदेतन्नीतं राजकुले कस्य मूर्ध्नि परिपतति ।
प्रतिभूर्भवद्विधानां क्व गृहीतः पण्यललनाभिः ॥ ३६ ॥

यदि यह मामला राजकुल (न्यायालय) में ले जाया जाय तब किस के शिर पर बीतेगा ? अर्थात् इसका परिणाम कौन भोगेगा ? आप लोगों के समान वेश्याओं का अवरोधक (शत्रु) कहाँ देखा गया है ? अथवा वेश्याएँ आप लोगों के समान विश्वास अन्यत्र कहाँ—किस-पर—करती हैं ? ॥ ३६ ॥

पश्यत पश्यत लोकाः कलिकालः कीदृशः प्रवृत्तोऽयम् ।
स्निग्धाः सुहृदः सधनाः स्त्रीवधपापं भजन्ते यत् ॥३७॥

अरे भाई देखो-देखो यह कैसा कलियुग प्रारम्भ हुआ है ? जिससे कि धनवान् प्रेमी मित्र जन भी स्त्रीवध के सदृश पाप करते हैं ॥ ३७ ॥

को वेत्ति गुणविभागं हस्तेन परीक्ष्यते कथं जातिः ।
दुर्ज्ञेयं कुटिलानां चेष्टितमन्यद्वचश्चान्यत् ॥ ३८ ॥

किस व्यक्ति में कितनी मात्रा में गुण हैं, इस बात को कौन जानता है ? हाय देखकर जाति की परीक्षा भला कैसे की जा सकती है ? कुटिल व्यक्तियों के कार्य एवं वचन दुर्ज्ञेय तथा परस्पर विरुद्ध हुआ करते हैं ॥ ३८ ॥

इत्युक्त्वा गृहपरिजनकलकलहोढप्रदुःसहविकारा ।
कङ्काली राजपथे चुक्रोश गतागतैस्तारम् ॥ ३९ ॥

ऐसा कह कर घर के परिजनों के हो-हल्ला से वर्द्धित दुःसह कष्टवाली कङ्काली ने राजमार्ग में इधर-उधर दौड़कर—आ-जाकर—जोरों से चीखना-चिल्लाना प्रारम्भ किया ॥ ३९ ॥

तद्वार्त्तयैव भीतास्ते सपदि विवर्णा निरुत्तरप्रतिभाः ।
निर्गत्योत्पथविवरैर्दूरतरे संगमं चक्रुः ॥ ४० ॥

उक्त बात के भय से ही एकाएक विवर्ण आकारवाले, कुछ भी उत्तर देने में असमर्थ वे विट बड़ी शीघ्रता से भागने के जिस किसी मार्ग से निकल कर काफी दूर पर जाकर परस्पर मिले ॥ ४० ॥

अथ ते विचार्य सुचिरं भोगभ्रष्टाः समापतितकष्टाः ।
मिथ्यापवादनष्टा निष्फलक्लिष्टा मिथो जग्मुः ॥ ४१ ॥

भोग से रहित (क्योंकि बालक अथवा वेश्या से द्रव्य नहीं मिल सका था); भारी विपत्ति का सामना करनेवाले, झूठे लाञ्छन के कारण नष्टप्राय व्यर्थ में ही क्लेश को प्राप्त होनेवाले वे विट काफी देरतक परस्पर विचार करके चले गये ॥ ४१ ॥

जाताक्षिपटलदोषैरिव नास्माभिर्व्रजन्वणिग्दृष्टः ।
कङ्काल्यैव हृतोऽसावित्यवदन्निर्गुटस्तत्र ॥ ४२ ॥

"आँख की पलकों में समुत्पन्न दोषवालों की भाँति हम लोगों के द्वारा जाता हुआ वणिक्-पुत्र देखा नहीं गया। निश्चय ही 'कङ्काली' ने ही उसे छिपा रक्खा है।" ऐसा 'निर्गुट' ने कहा ॥ ४२ ॥

राशि निगूह्य वणिजं पश्यत भूर्जेन निग्रहोऽस्माकम् ।
कुट्टन्यैव कृतोऽयं परिशोचन्नब्रवीद्दिगिरः ॥ ४३ ॥

"देखिये यह वृद्धा राशिरूप बालक को भूर्जपत्रों से ढककर अर्थात् भूर्जपत्र के सदृश मामूली पराने से छिपाकर हम लोगों को परेशान कर रही है। निश्चय ही यह सब इसी कुट्टिनी का किया हुआ है।" ऐसा अफसोस करते हुये 'दिगिर' ने कहा ॥ ४३ ॥

विहिताङ्गहारयुक्तिः कुट्टन्या पूर्वरङ्गयोग्योऽयम् ।
अस्मन्नृत्तं वृत्तं किमन्यदिति नाट्यविदाह ॥ ४४ ॥

नाट्यशास्त्र के ज्ञाता 'चान्द' ने कहा—'यह और दूसरा क्या है? कुट्टिनी के द्वारा पूर्वरङ्ग के योग्य यह अङ्गों के सञ्चालन अथवा अङ्गों को हार आदि से सज्जित करने की युक्ति की गयी है, जिसमें हम लोगों का यह नृत्त हुआ है" ॥ ४४ ॥

कपटतुलां कङ्कालीमङ्कशताङ्कामहं वेद्मि ।
विहितस्तया भ्रमोऽस्मावित्याह तुलाधरः कोपात् ॥ ४५ ॥

तुलाधर ने कोप करके कहा—'सैकड़ों गड्ढों से युक्त कपटतराजू की भाँति आचरण करनेवाली इस कङ्काली को मैं भली भाँति जानता हूँ। निश्चय ही इसने यह भ्रम फैलाया है" ॥ ४५ ॥

आकृष्य मेषभोगाद्दूरतरं मित्रमण्डलं वणिजः ।
कालकलयेव नीतं कङ्काल्या गणक इत्यूचे ॥ ४६ ॥

ज्योतिषी सिद्धगुन ने कहा—"जिस प्रकार काल की कला (समय की गति) सूर्य-मण्डल को मेष राशि के भोगने से हटा कर दूर अन्य राशियों पर ले जाती है उसी प्रकार इस 'कंकाली' ने भी उस वणिक्-पुत्र की मित्रमण्डली को अर्थात् हम लोगों को खींचकर दूर कर दिया है, जिससे हम लोग आनन्द-मौज (भोग) से वञ्चित हो गये हैं" ॥ ४६ ॥

पेया मद्यसमृद्धिस्त्वयैव सा कृतचिकित्सायाम् ।
लङ्घनमिदमुपदिष्टं तापादित्यब्रवीद्वैद्यः ॥ ४७ ॥

'तिक्त' नामक वैद्य (वैद्यपुत्र होने के नाते वैद्य) ने कहा—"भारी मात्रा में मद्यपान करना चाहिये" ऐसी चिकित्सा उसके द्वारा की जाने पर अर्थात् चिकित्सा के रूप में पर्याप्त मद्यपान को बतलाने पर पुनः ताप (ज्वर) के बढ़ने के अनन्तर उसने ही यह उपवास बतलाया है" ॥ ४७ ॥

नवसुखचरितं नष्टं कष्टं विभ्रष्टनियमवृत्तानाम् ।
अस्माकमेतदनुपममित्याह कविः श्वसन्विरमः ॥ ४८ ॥

लम्बी श्वासें लेते हुए कवि 'विरम' ने कहा—"भ्रष्ट नियम तथा वृत्त (छन्द) वाले (पक्षा०—भ्रष्ट आचरणवाले) हम लोगों का नवीन-सुखों के द्वारा निर्मित यह अनुपम कष्ट नष्ट हुआ" ॥ ४८ ॥

टिप्पणी—चूँकि उक्त कथन कवि 'विरम' जी का है, अतः रस तथा रसोद्भावक सुसंगत वाक्यरचना का अभाव अस्वाभाविक नहीं है ।

इति दुःखकोपविस्मयलज्जाकुलिताः कथां मिथः कृत्वा ।
कुसुमारामभ्रष्टा इव मधुपास्ते विटाः प्रययुः ॥ ४९ ॥

दुःख, क्रोध, विस्मय (आश्चर्य) तथा लज्जा से आकुल वे विट, इसी प्रकार की बात को परस्पर करके, कुसुमित उद्यान से गिरे हुये अथवा भगाये गये भ्रमरों की भाँति चले गये ॥ ४९ ॥

अथ कङ्काली गूढं निःशल्यां कामभोगसामग्रीम् ।
आस्वाद्य निशामनयन्निःशब्दमहोत्सवोत्साहा ॥ ५० ॥

इसके बाद 'कङ्काली' ने छिपे ही रूप से कण्टकरहित, कामोपभोग से प्राप्त सामग्री का अथवा अपनी इच्छानुसार भोगसामग्री का स्वाद लेकर के आनन्दमग्न हो चुपचाप रात्रि को व्यतीत किया ॥ ५० ॥

प्रातर्विचिन्त्य युक्तिं सा गत्वा हट्टभाण्डशालाग्रम् ।
कामिजनकस्य वणिजः स्फीतार्थसमृद्धिमद्राक्षीत् ॥ ५१ ॥

युक्ति को सोच करके, प्रातःकाल, उस कङ्काली ने बाजार में भाण्डशाला (बर्तन-घर) के सामने जाकर कामी उस वणिग्बालक के पिता की विशाल धन-सम्पत्ति को देखा ॥ ५१ ॥

सोऽपि महाधनसंचयलाभविशेषेऽपि सद्ग्राहः ।
पुत्रहृतहेमचिन्तासंतापात्कातरतरोऽभूत् ॥ ५२ ॥

प्रभूत धन-सम्पत्ति के एकत्रित रहने पर भी सदा संग्रही वह वणिक्

अपने पुत्र के द्वारा चुराकर ले जाये गये सुवर्ण की चिन्ता से अति दुःखी हो रहा था ॥ ५२ ॥

उन्नतवृसीनिविष्टः कोटित्रयलेख्यसंपुटीहस्तः ।

अर्थिजनवदनदर्शनमीलितनयनप्रसक्तसततान्ध्यः ॥५३॥

वह ऊँची वृषी (ऊन अथवा कुश आदि का पवित्र आसन) पर बैठा था । उनके हाथ में तीन करोड़ का दस्तावेज अथवा चेक था । याचकों के बोलने एवं दिखलायी पड़ने से आँख को बन्द करने के कारण वह अन्धता का धारण किये हुवे था अथवा याचक की भाँति न दिखलाई पड़ने के लिये (याचक आँख बन्द करके अन्धा बनता है) आँख को बन्द करने के कारण अन्धता को वह प्राप्त था ॥ ५३ ॥

बन्धादिमोक्षणागतलाभपरित्यागयाचने बधिरः ।

अत्यल्पपण्यदानप्रश्नप्रतिवचनजल्पने मूकः ॥ ५४ ॥

जब लोग गिरवी रक्खी गई वस्तुओं को छुड़ाने आते थे और लाभ (सूद=ब्याज) को कुछ कम करने की प्रार्थना करते थे तब वह बहरा बन जाता था । जब लोग थोड़ा सा भी पण्यदान (यह वह दान है जिसे प्रत्येक दुकानदार धर्मार्थ देता है) के लिये कहते थे तो वह उनका उत्तर देने में गूँगा बन जाता था ॥ ५४ ॥

तैलमलकलललाञ्छितमूषकजग्धार्धटिप्पिकाविकटः ।

शीर्णोर्णाप्रावरणप्रलम्बघनकञ्चुकाञ्चलालोलः ॥ ५५ ॥

तेल की मैल और उसकी कट्टी से लाञ्छित (चिह्नित) तथा मूषक के द्वारा कुतरी गयी टोपी को धारण करने से वह विकट प्रतीत हो रहा था । उसने फटे ऊनी चद्दर के साथ ही काफी दूर तक लटकने वाले मोटे कुर्ते को भी पहन रक्खा था । कुर्ते के अञ्चल के नीचे की ओर हिलने से वह चञ्चल हो रहा था ॥ ५५ ॥

नग्नोरुजानुजर्जरधूमारुणपृथुलशिथिलमोचोटः ।

रूक्षश्मश्रुकलापस्थूलप्रचलल्लडुम्पकग्रन्थिः ॥ ५६ ॥

वह एकदम फटी हुयी, धूएँ से कुछ कत्यई रंगवाली अथवा धूम की भाँति कत्यई रंगवाली, बहुत मोटी तथा ढीली ढाली बिनाई वाली धोती पहने हुये था। उसकी यह धोती केवल जाँघ और घुटने भर मुश्किल से थी। तेल के अभाव में रूखे उसके दाढ़ी के बालों में मोटी मोटी, हिलनेवाली, लटें पड़ी हुयी थीं ॥ ५६ ॥

निजगृहदिवसपरिव्यययाच्ञागतकन्यकाप्रहारोग्रः ।
रज्जुग्रथितबुभुक्षितमार्जारीरावनिर्दयप्रकृतिः ॥ ५७ ॥

वह अपने घर के दिनभर के खर्चे को माँगने के लिये आयी हुयी अपनी ही कन्या को मारने के लिए क्रुद्ध हो रहा था। रस्सी में बँधी हुयी पालतू बिल्ली की चिल्लाहट पर भी उसका पत्थर हृदय दयार्द्र नहीं होता था ॥ ५७ ॥

दूराद्वितर्क्यमाणः स तया नासार्पिताङ्गुलीलतया ।
ख्यातः स एव वणिगयमिति विदधे स निश्चितं तस्य ॥५८॥

अपनी नासिका पर अँगुली रक्खी हुयी (किसी बात को ध्यानपूर्वक विचारने की यह एक मुद्रा है) उस कङ्काली ने दूर से ही उस वणिक् के विषय में तर्कवितर्क करके यह निश्चय कर लिया कि निश्चय ही अपने धन के लिये विख्यात वह वणिक् यही है ॥ ५८ ॥

साथ शनैरुपसृत्य प्रविरलजननिर्मलावसरे ।
तमभाषत भाण्डपते वक्तव्यं किंचिदस्ति मम विजने ॥५९॥

भीड़ के समाप्त होने पर, जब कि थोड़े से व्यक्ति रह गये थे, उस कङ्काली ने उस वणिक् के पास जाकर कहा—"भाण्डपते! मुझे आप से एकान्त में कुछ कहना है ॥ ५९ ॥

पुत्रस्ते मुग्धमतिर्मृगशिशुरिव लुब्धकैर्विटैः कृष्टः ।
हारितभूषणवसनः संध्यायां हो मया दृष्टः ॥ ६० ॥

पहेलियों के द्वारा आकृष्ट किये गये भोले भाले हरिण के शिशु की भाँति, सरल बुद्धिवाला आप का लड़का विटों के द्वारा बहकाकर ले

जाया गया। उन लोगों ने उसके आभूषण एवं वस्त्रों को छीन लिया था। उसके बाद मैंने उसे देखा॥ ६०॥

दयया प्रवेशितोऽसौ मया स्वगेहं मनोहराकारः।
अविशत्क्षणं न जाने केन पथा मत्सुताहृदयम्॥ ६१॥

सुन्दर आकारवाले उस लड़के को मैंने दया आने के कारण अपने घर में बुला लिया था। मुझे पता नहीं कि किस मार्ग से अर्थात् किस भाँति वह मेरी पुत्री के हृदय में क्षण भर के लिये प्रविष्ट हो गया न जाने क्यों मेरी पुत्री ने उसका बहुत प्यार किया॥ ६१॥

स तया स्नानानन्तररचिराम्बरभूषणार्पणप्रणयैः।
राजार्हविविधभोगैः काम इवाभ्यर्चितो भक्त्या॥ ६२॥

उसने (मेरी पुत्री ने) उस बालक का स्नान कराकर के सुन्दर वस्त्र एवं आभूषण पहनाया तथा राजाओं के योग्य विविध प्रकार के भोजन आदि से भक्तिपूर्वक, कामदेव की भाँति, उसकी सेवा की॥६२॥

वंशजगौरवयोगात्सुवृत्तताश्लाघ्यरूपसंभारः।
कण्ठे हार इवासौ कृतस्तया गुणगणोदारः॥ ६३॥

पूर्वजों की महत्ता के कारण सुन्दर आचरण के योग से अत्यधिक प्रशंसनीय स्वरूपवाला, प्रशस्त गुणगणों के होने से उदार वह बालक उसके द्वारा अपने कण्ठ का हार सा कर लिया गया है॥ ६३॥

कायपणार्जितबहुविधराजसुतामात्यबहुधनेन सह।
अधुना त्वत्तनयोऽस्याः स्वामी प्राग्जन्मसंबन्धात्॥ ६४॥

शरीररूपी मूल्य से बहुत से राजपुत्रों एवं अमात्यों के अर्जित किये गये अत्यधिक धन के साथ ही तुम्हारा पुत्र पूर्वजन्म के सम्बन्ध के कारण इस समय मेरी पुत्री का स्वामी हो गया है॥ ६४॥

उचिततरसङ्गसुभगां [दृष्ट्वे व] कलावतीं रागयौवनोन्मत्ताम्।
तव हस्ते निक्षिप्तं स्त्रीधनसहितं मया गेहम्॥ ६५॥

तुम्हारे पुत्र के अत्यधिक योग्य सङ्गम से सुभग (सौभाग्यशालिनी), अनुराग एवं यौवन से उन्मत्त कलावती को देखकर ही मैंने स्त्री (कलावती) और धन के सहित अथवा स्त्रीधन (वेश्यावृत्ति से अर्जित धन) के सहित घर को तुम्हारे हाथ में समर्पित कर दिया है ॥ ६५ ॥

यातायां मयि तीर्थं कंचित्कालं त्वया कलावत्याः ।
मुद्रामुद्रितमखिलं सर्वस्वं पालनीयं तत् ॥ ६६ ॥

कुछ समय के लिये मुझे तीर्थयात्रा के हेतु चली जाने पर आपको कलावती की मुहर लगी हुई सम्पूर्ण सम्पत्ति की रक्षा करनी चाहिये ॥६६॥

अद्य तु भवता कार्यः पुत्रस्नेहात्स्नुषानुरोधाच्च ।
अस्मद्गेहे स्वल्पो भोज्योत्सवमङ्गलाचारः ॥ ६७ ॥

आज तो आपको अपने पुत्र के स्नेह तथा पुत्रवधू (कलावती) के अनुरोध से हमारे घर में थोड़ा भोज्योत्सव रूप मङ्गलाचार करना चाहिये" ॥ ६७ ॥

उक्त्वेति साश्रुनयना कङ्काली तस्य वज्रहृदयस्य ।
निपपात चरणयुगले सुतलाभविशेषतुष्टस्य ॥ ६८ ॥

ऐसा कहकर अपनी आँखों में आँसू भरी हुयी कङ्काली, अपने पुत्र के मिल जाने से अतिप्रसन्न, वज्र के समान हृदयवाले उस वणिक् के चरणों पर गिर पड़ी ॥ ६८ ॥

स च तामुवाच भद्रे सर्वमिदं हर्षकारि कुशलतरम् ।
किं तु त्वद्गमनं मे नाभिमतं सह गमिष्यावः ॥ ६९ ॥

उस वणिक् ने कङ्काली से कहा—"भद्रे ! यह सब प्रसन्नता प्रदान करनेवाला बहुत बड़ा कल्याण है। किन्तु तुम्हारा जाना मुझे अभीष्ट नहीं, हम दोनों साथ ही चलेंगे ॥ ६९ ॥

परभोजननियमवता भोक्तव्यं त्वद्गृहे कथं नु मया ।
संभोजनमूल्यं मे गृह्णासि तदा गमिष्यामि ॥ ७० ॥

मेरा नियम है कि मैं दूसरे के घर भोजन नहीं करता। ऐसी

अवस्था में मैं तुम्हारे घर कैसे भोजन कर सकता हूँ ? यदि तुम मुझ से सुन्दर भोजन खिलाने का मूल्य ग्रहण करोगी तभी मैं चलूँगा ॥७०॥

इत्युक्त्वास्या हस्ते दत्त्वा हृष्टः स रूपकं सार्धम् ।
तामन्तः स्मितवदनां विसृज्य पश्चाद्ययौ भोक्तुम् ॥ ७१ ॥

ऐसा कहकर कङ्काली के हाथ पर, प्रसन्नतापूर्वक, डेढ़ रुपये देकर, भीतर ही भीतर प्रसन्नवदनवाली उस वृद्धा को विदा करके बाद में भोजन करने के लिये स्वयं वहाँ गया ॥ ७१ ॥

तत्र सुतं सविलासं दृष्ट्वा कान्तासनाथसंभोगम् ।
निर्व्ययभोज्यसमृद्ध्या निश्चिन्तः प्रीतिमानभवत् ॥ ७२ ॥

वह वहाँ पर स्त्री के साथ सुन्दर-सुन्दर पदार्थों का भोग करते हुये, विलासमग्न अपने पुत्र को देखकर निश्चिन्त और बहुत प्रसन्न हुआ। उसकी प्रसन्नता इसलिये और अधिक थी कि वहाँ पर उसके पुत्र के लिये बिना कुछ व्यय किये ही भोजन के पदार्थों का ढेर लगा हुआ था ॥ ७२ ॥

कर्पूरैलापरिमलरसवासितविविधभोजनं भुक्त्वा ।
पीत्वा च भूरि मद्यं जगाद लुब्धः स कङ्कालीम् ॥ ७३ ॥

कर्पूर, इलायची आदि के सुगन्धित रस से वासित बहुत प्रकार के भोजन को खाकर और पर्याप्त मदिरा भी पीकर वह लालची वणिक् कङ्काली के पास गया ॥ ७३ ॥

सततं दिनव्ययं वः सर्वमहं समुचितं प्रदास्यामि ।
एवंविधस्तु न पुनः कार्यः स्थूलव्ययारम्भः ॥ ७४ ॥

"मैं सर्वदा आपलोगों के सम्पूर्ण समुचित दिन खर्च को दूँगा। किन्तु आप लोग पुनः इतने अधिक व्यय से होनेवाले इस प्रकार के समारोह को न करें" ॥ ७४ ॥

इत्युक्त्वा स गृहं निजमगमद्गगनस्थलीकृपिकृताशः ।
लाभप्रदर्शनं किल लुब्धधियां वञ्चनोपायः ॥ ७५ ॥

ऐसा कहकर "आकाश में खेती करने की आशा करनेवाला" अर्थात् असम्भव बात की आशा करनेवाला वह वणिक् अपने घर को चला गया। निश्चय ही लोभी व्यक्तियों को ठगने का सर्वोत्तम उपाय पहले उन्हें किसी प्रकार के लाभ को दिखलाना ही है ॥ ७५ ॥

अन्येद्युर्दिवसव्ययमानेतुं कुटिलचेतसस्तस्मात् ।
चित्तग्रहणाय निजां निससर्ज कलावती दासीम् ॥ ७६ ॥

दूसरे दिन शठचित्तवाले उस व्यक्ति से दिन खर्च को लेने के लिये तथा उसके चित्त को लुभाकर वश में करने के लिये कलावती ने अपनी दासी को भेजा ॥ ७६ ॥

सुचिरात्समेत्य दासी शरावचञ्चत्सहिङ्गुकणभूर्जा ।
हस्तेन विस्फुरन्ती कलावतीं सस्मितामवदत् ॥ ७७ ॥

काफी देर के बाद, एक सराव (कसोरा) में इधर-उधर हिलने वाले हिङ्गु-कणों के साथ भूर्जपत्र को लिये हुये दासी ने आकर के हाथ मटका मटका (हिला हिला) कर प्रसन्न मुखवाली कलावती से कहा ॥ ७७ ॥

श्वशुरेण ते महार्घः प्रहितोऽयं भूरिभोज्यसंभारः ।
उत्तिष्ठ कुरु विभागं निमन्त्र्यतां बन्धुवर्गश्च ॥ ७८ ॥

"आप के श्वशुर जी ने यह बहुमूल्य तथा पर्याप्त भोजन सामग्री के भार को भेजा है। उठिए, इसका वितरण कीजिए और भाई-बन्धुओं को निमन्त्रण दीजिए ॥ ७८ ॥

तैलस्य तोलकमिदं तोलकयुगलं च चूर्णलवणस्य ।
दत्त्वा मामिदमूचे भ्रुकुटीकुटिलाननः स परम् ॥ ७९ ॥

एक तोला भर तेल तथा दो तोला नमक देकर आँख के घूरने से अपने मुँह को कुटिल बनाकर उन्होंने मुझसे कहा ॥ ७९ ॥

तैलमिदं लवणमिदं शाकाय शेतिकाद्वयं दत्तम् ।
वेश्याशाः किं कामी ददाति द्रविणव्यये लक्षम् ॥ ८० ॥

मैंने यह तेल और नमक तथा शाक (सब्जी) के लिये यह दो कौड़ी दी है। कोई कामी किसी वेश्या के दिन-खर्च के लिये क्या एक लाख देता है?" ॥ ८० ॥

इत्युक्त्वा तत्प्रहितं दासी संदर्श्य थूत्कृतं बहुशः ।
क्षिप्त्वा दूरे तन्मुखदर्शनमलिनां निनिन्द दृशम् ॥ ८१ ॥

ऐसा कहकर उस वणिक् के द्वारा भेजे गये बहुत अधिक थूत्कृत (थूँक, खखार आदि) को दिखलाकर, उसे बाहर फेंककर, दासी ने उसके मुख को देखने मात्र से मलिन अपनी आँखों को धिक्कारा ॥ ८१ ॥

अन्येद्युः कङ्काली विचिन्त्य तद्वञ्चने सुखोपायम् ।
प्रययौ कृत्वा विजने कलावतीं विदितवृत्तान्ताम् ॥ ८२ ॥

दूसरे दिन, उस वणिक् को आसानी से ठगने के उपाय को सोचकर तथा एकान्त में कलावती को सम्पूर्ण योजना बतलाकर वह 'कङ्काली' वणिक् के पास गई ॥ ८२ ॥

सा वर्णमानमुद्रासदृशसमुद्गद्वयं विधाय नवम् ।
एकस्मिन्नाभरणान्यन्यस्मिन्नुपलखण्डिकां विदधे ॥ ८३ ॥

उसने रङ्गीन (पालिसदार) अथवा ठोस मानमुद्रा (तौल की मुद्रा=पाव, सेर आदि) के सदृश दो नवीन समुद्ग (हीरा, जवाहिरात रखने का छोटा बाक्स) बनवाया तथा एक में आभूषणों को रक्खा और दूसरे में पत्थर के टुकड़ों को ॥ ८३ ॥

स्थूलतरतूलपटिकाप्रावरणं प्राप्य भाण्डशालाग्रम् ।
सा कक्षाञ्चलसंवृतसमुद्गयुगलावदद्वणिजम् ॥ ८४ ॥

अपने कक्ष (काँख) के अञ्चल से दोनों समुद्ग को ढके हुयी उस 'कङ्काली' ने भाण्डशाला के सामने अत्यन्त मोटी रुई की पट्टी के वेष्टन को (रुई के पहले को) प्राप्त करके वणिक् से कहा ॥ ८४ ॥

टिप्पणी—यहाँ यह ध्यान रखना चाहिये कि रुई का पट्टी का यह वेष्टन ही कङ्काली को दोनों समुद्ग को अदला-बदली करने में सहायक होगा।

वाराणसीप्रयाणे नक्षत्रं क्षिप्रकृन्ममोपनतम् ।
नास्ति पुनर्वसुना तत्र दर्शनमात्रं मयि गतायाम् ॥ ८५ ॥

वाराणसी की मेरी यात्रा के लिये अतिशीघ्र ही मुझे मुहूर्त प्राप्त हुआ है अर्थात् यात्रा का मुहूर्त बहुत शीघ्र ही आने वाला है। यदि उस नक्षत्र (मुहूर्त) को छोड़कर मैं पुनर्वसु नक्षत्र में जो उसके बाद आने वाला है, यात्रा करती हूँ तो जाने के बाद लौटकर मैं आप का दर्शन न कर सकूँगी (उस नक्षत्र में यात्रा से या तो यात्रा करनेवाला मरता है अथवा उसका मित्र) अथवा धन लेकर यात्रा करने से मैं लौटकर आपका दर्शन न कर सकूँगी (क्योंकि धन-लोलुप व्यक्ति मुझे मार डालेंगे) ॥ ८५ ॥

टिप्पणी—पुनर्वसु में यात्रा करने से अनिष्ट होने की बात धूर्त वेश्या की उक्ति होने से प्रमाण नहीं मानना चाहिये।

इदमाभरणं सर्वं समुद्गकेऽन्यस्तमस्ति रत्नाङ्कम् ।
स्त्रीबालधनं भवता प्राणसमं सर्वथा रक्ष्यम् ॥ ८६ ॥

रत्नजटित यह सम्पूर्ण आभूषण इस समुद्ग में रक्खा हुआ है। यह स्त्री (कलावती) और बालक (वणिक्पुत्र) का धन है, अतः आप इसकी प्राणों की भाँति रक्षा करेंगे ॥ ८६ ॥

इत्युक्त्वा तत्परं संदर्श्य पुनः समुद्रितं कृत्वा ।
निक्षिप्य पुरः प्रचुरं सा तमवादीत्सहेलेन ॥ ८७ ॥

ऐसा कहकर, उन सम्पूर्ण आभूषणों को दिखलाने के अनन्तर पुनः भली भाँति उसी समुद्ग में बन्द करके उस वणिक् के सामने रख कर उसने हँसी में ही कङ्काली ने कहा ॥ ८७ ॥

पाथेयमतः पृष्ठालाभे न ममोपयुज्यते लक्ष्यम् ।
त्वं दातुमर्हसि मह्यं देवालयधान्यभुक्तिसंशोध्यम् ॥ ८८ ॥

"किसी अन्य प्रकार के लाभ न होने से (तीर्थयात्रा में अन्य

प्रकार के किसी भी लाभ की संभावना न होने से) मुझे देवालयों में लाये गये पदार्थों के मूल्य को चुकता करके के योग्य एक लाख राह-खर्च (मार्गव्यय) अपेक्षित है। अतः मित्र ! मुझे एक लाख मुद्रा देने की कृपा करें" ॥ ८८ ॥

इति लीलया ब्रुवाणा समुद्गयुगलस्य विनिमयं कृत्वा ।
लक्षं क्षणाद् गृहीत्वा जगाम निजवेश्म कङ्काली ॥८९॥

लीलापूर्वक इस प्रकार कहती हुई कङ्काली ने दोनों समुद्र का अदला-बदली करके अर्थात् पत्थर के टुकड़ों से भरे हुये समुद्र को वणिक् के सामने रखकर और आभूषणवाला स्वयं लेकर क्षण भर में ही एक लाख मुद्रा ग्रहणकर अपने घर को चली गयी ॥ ८९ ॥

टिप्पणी—यहाँ यह ध्यान रखना चाहिये कि 'कङ्काली' ने पहले वणिक् को केवल आभूषण वाला ही समुद्र दिखलाया था।

अथ निर्वर्तितकृत्यां ज्ञात्वा तामागतां वणिग्भवनात् ।
शङ्खसुतं हर्म्यगता प्रोवाच कलावती विजने ॥ ९० ॥

उस वणिक् के घर से अपना कार्य पूर्ण करके कङ्काली को आयी हुयी जानकर कलावती ने कोठेपर-छतपर-जाकर एकान्त में 'शङ्ख' के लड़के (वणिक् पुत्र) से कहा ॥ ९० ॥

त्वयि मे हृदयमकस्मादन्तः सक्तं बलान्न निर्याति ।
त्वं तु धनवान्विवाहं करिष्यसीत्येव मे शङ्का ॥ ९१ ॥

मेरा हृदय तुम में पूर्णरूप से लीन हो गया है, अतः बलपूर्वक निकालने पर भी नहीं निकल रहा है। किन्तु मुझे एक ही शङ्का है—तुम धनवान् हो अतः विवाह कर लोगे ॥ ९१ ॥

दिनरमणीयः पुंसां जन्मजघन्यस्तु गेहिनीसङ्गः ।
तदपि विवाहे मोहादविचारतरादराः पशवः ॥ ९२ ॥

पुरुषों का गृहिणी के साथ सङ्गम जन्म से ही जघन्य एवं एक दिन तक अर्थात् स्वल्पकाल तक ही रमणीय है। तो भी (मोहवश)

पशुओं के समान अविचारी पुरुषवर्ग विवाह के विषय में आग्रह करते हैं ॥ ६२ ॥

निन्त्यप्रसूविहतसुस्थिरयौवनेषु
वेशोपचाररहितेषु मदोज्झितेषु ।
गोष्ठीविलासरसकेलिनिरादरेषु
दारेषु का स्मररुचिः कलहाङ्कुरेषु ॥ ९३ ॥

नित्य ही बच्चा पैदा करने से विनष्ट यौवनवाली, वेशप्रसाधन से रहित अर्थात् वेश को आकर्षक बनाने की कला से अनभिज्ञ, मदहीन, सामाजिकों की गोष्ठी में होनेवाले विलास की रसकेलि का तिरस्कार करनेवाली, कलह के मूल, गृहिणियों में भला पुरुषों की कैसे कामरुचि (सम्भोग-सम्बन्धी अभिलाषा) होती है ? ॥ ९३ ॥

जात्यैव कामिजनरञ्जनजीवितासु
वेशोपचारनिरतासु सुगौरभासु ।
कामप्रमोदमसृणासु सविभ्रमासु
वेश्यासु कस्य न रतिः सततस्मितासु ॥ ९४ ॥

जाति से ही कामिजनों का मनोरञ्जन करके जीवित रहनेवाली, वेश-भूषा को लुभावना बनाने में संलग्न रहनेवाली अथवा पुरुषों को मूर्च्छित करनेवाले यान व्यवहार में निरत रहनेवाली, सुगन्धित, काम-प्रमोद में विदग्ध, हाव भाव आदि से परिपूर्ण, सर्वदा हँसमुख वेश्याओं में भला किस की रति (प्रेम) न होगी ? ॥ ९४ ॥

कुरु मे प्रत्ययहेतोर्घनधारणपत्रिकां विवहे [त्वम्] ।
लिखिता सैव वशास्ते मत्तगजस्याङ्कुशशिखेव ॥ ९५ ॥

तुम विरह (अग्नि की सात जिह्वाओं में एक का नाम) के आधार पर अर्थात् अग्नि की साक्षी में मेरे विश्वास के लिये धन-धारण पत्रिका (कर्ज लेने का दस्तावेज, रुक्का) लिख दो। लिखी गयी यह पत्रिका

ही, मत्तगज को वश में करने के लिये अङ्कुश की नोक की भाँति, तुम्हें वश में करने के लिये मेरे पास साधन होगी ॥ ६५ ॥

इत्युक्तः स रमण्या स्थूलतरोज्जासपत्रिकामलिखत् ।
नाम्ना विक्रमशक्तेर्नृपमहिषीभ्रातृपुत्रस्य ॥ ९६ ॥

उस रमणी के द्वारा इस प्रकार कहे गये उस वणिक्-पुत्र ने राजरानी के भ्रातृपुत्र 'विक्रमशक्ति' के नाम से एक बहुत बड़ी उज्जास-पत्रिका अपने को बँधाने के लिये (विनाश के लिये—ऋण-पत्रिका) लिख दी ॥ ६६ ॥

अथ शय्याभवनगतं प्रातः स्वयमेत्य कङ्काली ।
जामातरमिदमवदन्मिथ्यैव सखेदवदनेव ॥ ९७ ॥

इसके अनन्तर प्रातःकाल जब कि वह वणिकपुत्र शयन करने के कमरा (कक्ष) में स्थित था, झूठे ही अपने मुँह को लटकाये हुयी सी 'कङ्काली' ने उससे कहा ॥ ६७ ॥

आसन्नयौवनस्त्वं दुहितुर्मे यौवनं त्वया प्रायः ।
क्षपितमलक्ष्यं स्त्रीणां गलति हि सहसैव तारुण्यम् ॥ ९८ ॥

तुम्हारी जवानी अब शीघ्र ही आने वाली है। तुमने मेरी पुत्री की युवावस्था को प्रायः समाप्त कर दिया है, क्योंकि स्त्रियों की तरुणाई सहसा इस प्रकार से समाप्त हो जाती है कि उसे कोई देख भी नहीं पाता ॥ ६८ ॥

स्थिरयौवनाः प्रकृत्या पुरुषाः किल तालसालसंकाशाः ।
ह्यः कन्यकाद्य तरुणी प्रातर्वृद्धा भवत्येव ॥ ९९ ॥

ताल एवं साल (दोनों ही वृक्ष विशेष हैं) के सदृश पुरुष लोग निश्चय ही स्वभावतः स्थायी युवावस्थावाले होते हैं अर्थात् पुरुषों को यौवन अधिक दिन तक टिकाऊ होता है। किन्तु स्त्रियों के विषय में क्या कहें ? जो अभी कल कन्या थी वह आज तरुणी हो जाती है और जो आज तरुणी है वही कल वृद्धा हो जाती है ॥ ६६ ॥

मासादधिकायातं दिनद्वयं पुष्पदर्शनस्नाने ।
अद्यैव कलावत्या गर्भाशङ्काकुलं चेतः ॥ १०० ॥

रजस्वला होने के अनन्तर स्नान किये हुये कलावती को एक महीने से केवल दो दिन अधिक बीते हैं, किन्तु आज ही उसका चित्त गर्भ रह जाने की आशङ्का से व्याकुल हो उठा है ॥ १०० ॥

यौवनविभ्रमशापस्तनुनलिनीतुहिननिकरघनपातः ।
प्रसवदिनं नारीणां पातकमुग्रं स्तनयुगस्य ॥ १०१ ॥

स्त्रियों के प्रसव का दिन उनके यौवन के सौन्दर्य के लिये शाप है, उनकी शरीररूपी कमलिनी के लिये तुषारसमूह की धारासार वृष्टि है और उनके दोनों स्तनों का उग्र पाप है अर्थात् प्रसव स्त्रियों के यौवन शरीर-सौन्दर्य एवं स्तनद्वय का संहारक है ॥ १०१ ॥

प्रसवहृतयौवनानामधोमुखे लज्जयेव कुचयुगले ।
भवति न पण्यवधूनां विक्रयचर्चा तृणेनापि ॥ १०२ ॥

प्रसव होने से समाप्त यौवनवाली वेश्याओं के दोनों स्तन मानो लज्जा के कारण नीचे की ओर मुख करके लटक जाते हैं, और उन्हें कोई तृण देकर भी खरीदने की चर्चा नहीं करता ॥ १०२ ॥

स्थविरत्वे पुरुषाणां भवन्ति सुखजीविकाः परिज्ञानैः ।
यौवननाशे वेश्या यदि परमटति स्फुटं भिक्षाम् ॥ १०३ ॥

पुरुष लोग अपनी वृद्धावस्था में अपने गम्भीर ज्ञान के माध्यम से सुखपूर्वक जीविका प्राप्त कर लेते हैं, किन्तु वेश्याएँ अपनी युवावस्था की परिसमाप्ति पर केवल इधर-उधर भ्रमण करके भिक्षा ही माँगती हैं ॥ १०३ ॥

तस्माज्जनकाभावादविकलमापत्स्यमाननिजविभवम् ।
अधिकरणपत्रलिखितं प्रयच्छ सुमते कलावत्यै ॥ १०४ ॥

अतः हे सुमते ! अपने पिता के न रहने पर प्राप्त होनेवाली अपनी

सम्पूर्ण सम्पत्ति को अधिकरणपत्र (दस्तावेज) पर लिखकर कलावती को समर्पित कर दो ॥ १०४ ॥

इत्युक्ते कुट्टन्या मोत्साहः प्रीतये वणिक्तनयः ।
आपत्स्यमानमखिलं प्रददौ हृष्टः कलावत्यै ॥ १०५ ॥

कुट्टिनी के द्वारा ऐसा कहने पर उस वणिक्पुत्र ने बड़े उत्साह और हर्ष के साथ कलावती की प्रसन्नता के लिये अपनी उस सम्पूर्ण सम्पत्ति को लिखकर उनको समर्पित कर दिया जिसका वह उत्तराधिकारी था ॥ १०५ ॥

अथ शिथिलादरया[म]द्वित्रैर्दिवसैः समेत्य कङ्काल्या ।
कृतसंकेतः कङ्कः ··श्रुत्यै कलावतीमूचे ॥ १०६ ॥

जब उस बालक ने प्राप्त होने वाली अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति भी लिख दिया तब कङ्काली ने उसका आदर मान कमकर दिया। अभी उक्त पत्र को लिखे केवल दो-तीन ही दिन बीते होंगे कि 'कङ्काली' के द्वारा संकेत प्राप्त करके बालक को सुनाते हुए 'कङ्क' ने कलावती से कहा ॥ १०६ ॥

अयि रागदग्धहृदये कलावति व्रतवतीव कस्य त्वम् ।
एष त्वामर्थयते ठक्कुरपुत्रो रणविलासः ॥ १०७ ॥

"अनुराग से दग्ध हृदयवाली हे कलावति ! तुम किस व्यक्ति के लिये व्रत-धारण करनेवाली (पतिव्रता-व्रत धारण करके अन्य के साथ रमण न करनेवाली) सी हो ? यह ठक्कुर का पुत्र 'रणविलास' (रण में शौर्य प्रदर्शित करनेवाला) तुम्हें चाह रहा है ॥ १०७ ॥

देवगृहगञ्जादिविरस्तव सततप्रार्थनानुबन्धेन ।
पदमुक्तिबन्धकाले गणयति चण्टं मकरगुप्तः ॥ १०८ ॥

देवगृह (मन्दिर) का 'मकरगुप्त' नामक कोषाध्यक्ष, संमेगार्य, तुम्हारी निरन्तर प्रार्थना करने से, देवगृहाध्यक्ष को क्रुद्ध समझकर

अपनी पदमुक्ति के काल को भी धन्य समझता है अथवा आनन्द के लिये (तुम्हारे साथ संभोगरूप आनन्द के लिये) पदमुक्ति से धन्यकाल में उत्कण्ठापूर्वक समय गिन रहा है ॥ १०८॥

अद्यापि महामात्यः सत्यरथस्त्वत्कृते समर्घदिने ।
प्रहिणोति वस्त्रयुगलं न च प्रसादस्त्वयास्य कृतः ॥ १०९ ॥

आज भी इस महर्घता (महँगी) के दिन में महामन्त्री 'सत्यरथ' (सत्यपथ पर ही चलने वाले) तुम्हारे लिये दो वस्त्र-भेज रहे हैं किन्तु आज तक तुमने इन पर कभी कृपा नहीं की है अर्थात् अपने साथ सहवास का अवसर इन्हें नहीं प्रदान किया है ॥ १०९ ॥

प्रेक्षणके त्वां दृष्ट्वा साहसराजेन राजपुत्रेण ।
त्वद्गत[स]रभसमनसा वासवसेनावरुद्धिका त्यक्ता ॥ ११० ॥

झरोखे पर बैठी हुई तुम्हें देखकर राजा के लड़के "साहसराज" (शूरता के अधिपति) का मन तुममें आसक्त होकर कामातुर हो उठा। परिणामस्वरूप उन्होंने अपनी प्रेयसी 'वासवसेना' का परित्याग कर दिया है ॥ ११० ॥

विरजसि वयसि नवेऽस्मिन्नेकश्चेदीप्सितस्तव स्वामी।
तत्किं यौवनभङ्गे ददाति कश्चिद्धनं मुग्धे ॥ १११ ॥

हे मुग्धे ! इस नवीन निखरी हुई अवस्था में यदि तुम्हें एक ही व्यक्ति, जिसे तुम अपना स्वामी समझती हो, अभीप्सित हो, अथवा एक ही स्वामी अभीप्सित है, तो क्या युवावस्था के बीत जाने पर कोई तुम्हें धन देगा ? ॥ १११ ॥

याभिर्यौवनसमये रागेण धनार्जनं परित्यक्तम् ।
ता एताः पर्यन्ते भस्माङ्गयर्थविरण्यश्च ॥ ११२ ॥

जिन्होंने अपनी युवावस्था के समय में केवल एक ही व्यक्ति में ही प्रेम करके धन के अर्जन का परित्याग कर दिया था, वे ही ये

वेश्यायें तुम्हारे दान में ही शरीर में भस्म पोते तथा चिथड़े को धारण किये मारी-मारी घूम रही हैं ॥ ११२ ॥

कुचकाञ्चनकलशवती नितम्बसिंहासना स्मितच्छत्रा।

एकपुरुषोपसेव्या नूनं त्वं रतिरमणराज्यश्रीः ॥ ११३ ॥

कुचरूपी सुवर्ण के कलश को धारण करनेवाली, नितम्बरूपी राज-सिंहासनवाली, मुस्कराहटरूप राजछत्र को धारण करनेवाली तथा एक पुरुष के उपभोग के योग्य तुम निश्चय ही काम की राज्यश्री हो ॥ ११३ ॥

भुक्तं मयास्य वित्तं दाक्षिण्यमिति प्रनष्टविभवेऽपि।

मा त्वं कृथाः सुमध्ये ह्यो भुक्तं नाद्य तृप्तिकरम् ॥ ११४ ॥

हे सुन्दर कटितटवाली कलावति! "मैंने इसका धन खाया है" ऐसा सोचकर निर्धन व्यक्ति में भी तुम उदारता मत करना; क्योंकि कल का खाया हुआ पदार्थ आज तृप्तिकारक नहीं होता ॥ ११४ ॥

दासी दासी तावद्यावत्पुरुषस्य किंचिदस्ति करे।

क्षीणधनपुण्यराशेर्दुष्प्रापा स्वर्गनगरीव ॥ ११५ ॥

दासी तभी तक दासी है जब तक कि पुरुष के हाथ में कुछ है। धन के नष्ट हो जाने पर वह (दासी) उसी प्रकार से दुर्लभ हो जाती है जैसे—क्षीणपुण्य वाले व्यक्ति को स्वर्गनगरी ॥ ११५ ॥

ह्यो दत्त्वार्थं कथमिह गच्छाम्यद्येति निपतति प्रायम्।

कः कुरुते वेश्यानां तत्क्षणघनदानभोग्यानाम् ॥ ११६ ॥

"कल धन देकर आज कैसे जाऊँ" ऐसा सोचकर तत्काल धन

देकर सम्भोग-पात्र वेश्याओं के पास कौन व्यक्ति निवास करने की बुद्धि करेगा ?" ॥ ११६ ॥

इति कङ्कवदननिर्गतवचनशरैर्दारितो वणिक्तनयः।
निश्चेष्टः क्षणमभवद्वीलत्याद्वीक्ष्यमाणः क्ष्माम् ॥ ११७ ॥

इस प्रकार से 'कङ्क' के मुख से निकले हुये वचनरूपी बाणों से विदीर्ण किया गया वणिक्पुत्र लज्जा के कारण पृथिवी को देखते हुये क्षणभर के लिये निश्चेष्ट—किंकर्तव्यविमूढ़—हो गया ॥ ११७ ॥

अथ शूलबन्धुनिधनश्यमनाद्यङ्गप्रसङ्गकथनाद्यैः।
शय्यावहारमकरोत्कलावती शङ्खतनयस्य ॥ ११८ ॥

इसके अनन्तर "आज मेरे शरीर में भीषण पीड़ा है, आज मेरा अमुक सम्बन्धी मर गया है अतः बड़ा कष्ट है" इसी प्रकार के अनेक शारीरिक तथा मानसिक कष्टों को कह करके कलावती ने 'शङ्ख' के पुत्र उस बालक के साथ एक शय्या पर शयन आदि कार्य का परित्याग कर दिया ॥ ११८ ॥

अद्य व्रतनियमो मे दुःस्वप्ननिरीक्षणात्परं मातुः।
षष्ठीप्रजागरोऽद्य च राजकुले तत्र मे शय्या ॥ ११९ ॥

"खराब स्वप्न देखने के कारण आज मैं माँ दुर्गा का व्रत कर रही हूँ। आज षष्ठी का जागरण है अतः राजकुल में ही मुझे रहना और सोना होगा ॥ ११९ ॥

अद्य वयस्यासूनोश्चूडाकरणं मृगाङ्कदत्तस्य।
इत्यादिभिरपदेशैः सा प्रययौ कामिनां भवनम् ॥ १२० ॥

आज मेरी सखी के पुत्र 'मृगाङ्कदत्त' का चूडाकरण संस्कार है।" इसी प्रकार के बहुत से बहाने बनाकर वह (कलावती) कामिजनों के घरों को जाती थी ॥ १२० ॥

त्वरिता ततः प्रभाते कदाचिदभ्येत्य कम्पविकलाङ्गी।
कङ्काली शङ्खसुतं जगाद भयसंभ्रमार्तेव ॥ १२१ ॥

उसके बाद किसी समय प्रातः काल भय के वेग से विकल की भाँति, कम्प के कारण विह्वल अङ्गवाली 'कङ्काली' बड़ी शीघ्रता में 'शङ्खपुत्र' उस बालक के पास जाकर बोली ॥ १२१ ॥

उत्तिष्ठ पुत्र तूर्णं व्रज दत्त्वा शिरसि किंचिदविभाव्यम् ।
अस्मत्कृतेऽद्य यूनोः सपत्नकलहे वधो वृत्तः ॥ १२२ ॥

"हे पुत्र ! उठो, अपने सिर पर कोई ऐसी चीज रख लो जिससे तुम पहचाने न जा सको और अतिशीघ्र यहाँ से चले जाओ । आज हमारे लिये (कलावती के लिये) सपत्नकलह में (एक ही पत्नी के लिये होनेवाले कलह में) दो युवकों का वध हो गया है ॥ १२२ ॥

नगरपतिर्विषमतरः कलावती मित्रमन्दिरं याता ।
त्वं तु वणिक्सुत साधुर्धनगन्धे धावति क्ष्मापः ॥ १२३ ॥

नगर का शासक अत्यन्त भयङ्कर है । कलावती अपने मित्र के घर चली गयी है । हे वणिकपुत्र ! तुम तो बड़े साधु हो जो अभी तक नहीं गये । शीघ्र चले जाओ, क्योंकि राजा (शासक) धन की गन्ध पर दौड़ता है अर्थात् धन वसूल करने के लिये धनी व्यक्ति को ही पकड़ता है ॥ १२३ ॥

तूलपटीं त्यज पृष्ठाद् गृहाण तुस्तीं (?) परट्टमालातः ।
को जानीते वर्त्मनि किं कुरुते कः परिज्ञाय ॥ १२४ ॥

सूती कपड़ों को छोड़ दो । छत पर रखी हुई परट्टमाला (रहट) से लेकर के कम्बल के टुकड़ों को पहन लो । कौन जाने मार्ग में कोई तुम्हें पहचान कर क्या करे ॥ १२४ ॥

इत्युक्ते कङ्काल्या मिथ्यैव विशल्यवेश्मकरणाय ।
कृत्वा तदुक्तमखिलं पङ्कः प्रययौ कुमार्गेण ॥ १२५ ॥

अपने घर को कण्टकशून्य करने के लिये 'कङ्काली' के द्वारा झूठे ही ऐसा कहने पर 'पङ्क' नामक वणिकपुत्र उसके (कङ्काली के) द्वारा

बतायी गयी सभी बातों को करके अर्थात् कम्बल आदि पहनकर कुमार्ग (सकरी गली आदि) से चला गया ॥ १२५ ॥

टिप्पणी—यहाँ यह बात भी कवि ध्वनित करता है कि 'कङ्काली' की बातों का अनुसरण करते हुये वह बालक कुमार्ग पर चलने के कारण विनष्ट हो गया।

वेश्यालताः सरागं पूर्वं तदनु प्रलीनतनुरागम् ।
पश्चादपगतरागं पल्लवमिव दर्शयन्ति निजचरितम् ॥ १२६ ॥

वेश्यारूपी लताएँ पहले लालिमा से संयुक्त (पक्षा०—अनुरागपूर्ण) और उसके बाद में कम लालिमा वाले (पक्षा०—कम अनुराग वाले) तथा बाद में लालिमा से रहित (पक्षा०—अनुराग से शून्य) पल्लव की भाँति अपने चरित को दिखलाती हैं ॥ १२६ ॥

इति समयमातृकायाः कङ्काल्या बुद्धिसंविभागेन ।
भुक्त्वा वणिजः सकलं कलावती पूर्णविभवाभूत् ॥ १२७ ॥

इस प्रकार समयमातृका—आवश्यक समय पर मातृ-पद को स्वीकार करने वाली—'कङ्काली' के बुद्धि वैभव से वणिक् के सर्वस्व को भोग कर 'कलावती' पूर्ण सम्पत्तिशालिनी हो गयी ॥ १२७ ॥

इति बहुभिरुपायैः कुट्टनी कामुकानां
कृतसुकृतविहीना वञ्चनां मा कृतघ्ना (?) ।
वनभुवि मृगबन्धं हन्त पश्यन्ति नित्यं
तदपि हरिणशावाः कूटपाशं विशन्ति ॥ १२८ ॥

इसी प्रकार से क्षीणपुण्यवाली, धृतघ्न वह कुट्टिनी विविध उपायों से कामुक व्यक्तियों की वञ्चना करती रही। खेद की बात है कि जङ्गल में बहुत से हरिण शिशु मृगों के बन्धन को नित्य ही देखते हैं तथापि वे स्वयं भी कपट जाल में जाकर फँस जाते हैं अर्थात् वेश्याओं के जाल में फँस कर बहुत से व्यक्तियों को मरते देखकर भी लोग उनके (वेश्याओं के) कूटजाल में फँस ही जाते हैं ॥ १२८ ॥

समयेन मातृका सा कृत्रिमरूपा कृता कलावत्या ।
तन्नाम्नैव निबन्धः क्षेमेन्द्रेण प्रबद्धोऽयम् ॥ १२९ ॥

इति श्रीक्षेमेन्द्रकृतायां समयमातृकायां कामुकप्राप्ति-
र्नामाष्टमः समयः ।



कलावती ने समय पर उन 'कङ्काली' को अपनी कृत्रिम माता बनाया था । अतः 'क्षेमेन्द्र' ने उसी के नाम से ही इस निबन्ध (काव्य) को लिखा है ॥ १२९ ॥

श्री क्षेमेन्द्र के द्वारा विरचित 'समय मातृका' का कामुकप्राप्ति-
नामक यह अष्टम समय समाप्त हुआ ।



उपसंहारः

मालंकारतया विभक्तिरुचिरच्छाया विशेषाश्रया
वक्रा सादरचर्वणा रसवती मुग्धार्थलब्धा परम् ।
आश्चर्योचितवर्णनानवनवास्वादप्रमोदार्चिता
वेश्या सत्कविभारतीव हरति प्रौढा कलाशालिनी ॥ १ ॥

उपमा आदि अलङ्कारों से अलङ्कृत होने से (पक्षा० सुन्दर आभूषणों को धारण करने से) सुप तिङ् विभक्ति की रुचिर विन्यस्त कान्तिवाली (पक्षा० पत्ररचना आदि की सुन्दर कान्तिवाली), विशेषालङ्कार की आश्रयभूता (पक्षा० धनी व्यक्ति का आश्रय करनेवाली), वक्रोक्तिपूर्ण (पक्षा० कुटिल), आदरपूर्वक मनन (चर्वण) को जानेवाली (पक्षा० आदरपूर्वक चुम्बन को जानेवाली), शृंगार आदि रसों से भली-भाँति पूर्ण (पक्षा० पूर्ण सरस), सुन्दर अर्थ से सवलित (पक्षा० भोले-भाले व्यक्तियों के धनको प्राप्त करनेवाली), आश्चय से परिपूर्ण कथानक के नवीन-नवीन आस्वाद के आनन्द से समृद्ध (पक्षा० आश्चर्यपूर्ण किसी बात के कहने से होनेवाले सर्वथा नवीन आस्वाद के आनन्द के कारण कामुकों से सत्कृत), चतुःषष्टि कलाओं से भरपूर (पक्षा० हाव-भाव आदि कलाओंवाली), उच्चकोटि की (पक्षा० प्रौढ़ वयवाली) सच्चे कवि की कविता की भाँति वेश्या किसके मन का हरण नहीं करती ? ।

संवत्सरे पञ्चविंशे पौषशुक्लादिवासरे ।
श्रीमतां भूतिरक्षार्थं रचितोऽयं स्मितोत्सवः ॥ २ ॥

पचीसवें संवत्सर में, पौष मास के शुक्लपक्ष की प्रतिपद् तिथि को श्रीमानों की सम्पत्तिरक्षा के लिये यह प्रबन्ध रचा गया ॥ २ ॥

अद्रिच्छिद्रगिनिद्ररौद्रफणिनामत्रास्ति कालं कुलं
नक्तास्तत्र नमन्ति दन्तिपतयः ।पिष्टाश्रपेषं गुहा ।

इत्यार्तिप्रतिबद्धवृद्धशबरी वर्गेण मार्गाग्रगा
यद्वैरिप्रमदाः सदा वनमहीगाढग्रहे वारिताः ॥ ३ ॥

जहाँ पर पर्वत के पत्थरों की सन्धियों में जगे हुये भयङ्कर कृष्ण सर्पों का समूह रहता है वहाँ मदमत्त हाथी निवास करते हैं। इस गुफा में सिंह रहता है। इस प्रकार दुःखी ('अनन्त' नामक राजा के शत्रुओं की स्त्रियों की दुर्दशा को देखकर दुःखी) वृद्ध शबरी (भिलनी) स्त्रियों के द्वारा, भयङ्कर जङ्गलों में छिपे निवास के समय, पैदल मार्ग पर चलनेवाली, जिसके ('अनन्त' के) शत्रुओं की स्त्रियाँ सर्वदा सावधान की जाती हैं ॥ ३ ॥

वीरस्यार्तदयाविधेयमनसः शीलव्रतालंकृते-
र्निस्त्रिंशः परदारकृज्जयविधौ यस्यैककार्यः सुहृत् ।
तस्यानन्तमहीपतेर्विरजसः प्राज्याधिराज्योदये
क्षेमेन्द्रेण सुभाषितं कृतमिदं सत्पक्षरक्षाक्षमम् ॥ ४ ॥

इति श्रीक्षेमेन्द्रकृता समयमातृका समाप्ता ।



वीर, दुःखियों के प्रति करुणार्द्र चित्तवाले, शीलरूप व्रत से अलंकृत अर्थात् सुशील जिस राजा की शत्रुविनाशक तलवार शत्रुओं की स्त्रियों के द्वारा किये जाने वाले विजय के विधान में (समरभूमि में पतियों के मर जाने पर राजधानी की रक्षा के लिये छोड़ी गयी सेना को लेकर उनकी स्त्रियाँ शत्रु राजा पर विजय के लिये आक्रमण करती थीं) एकमात्र मित्र होती है, उन्हीं निष्पाप "अनन्त" महीपति के राज्याधिरोहण के समय 'क्षेमेन्द्र' के द्वारा सज्जनों के पक्ष की रक्षा करने के योग्य यह सुभाषित रचा गया ॥ ४ ॥

इसप्रकार श्री क्षेमेन्द्र के द्वारा रचित समयमातृका
समाप्त हुयी

